इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

एम.एच.डी.-6

हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास

आधुनिक साहित्य-II

5

"शिक्षा मानव को बन्धनों से मुक्त करती है और आज के युग में तो यह लोकतंत्र की भावना का आधार भी है। जन्म तथा अन्य कारणों से उत्पन्न जाति एवं वर्गगत विषमताओं को दूर करते हुए मनुष्य को इन सबसे ऊपर उठाती है।"

— *इन्दिरा गांधी*

"Education is a liberating force, and in our age it is also a democratising force, cutting across the barriers of caste and class, smoothing out inequalities imposed by birth and other circumstances."

– Indira Gandhi

इंदिरा गांधी
राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

एम.एच.डी. - 6
हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास

खंड

5

आधुनिक साहित्य-II

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. ओम अवस्थी
गुरुनानक देव
विश्वविद्यालय, अमृतसर

प्रो. गोपाल राय
सी–3, कावेरी, इग्नो आवासीय
परिसर, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

प्रो. नामवर सिंह
32–ए, शिवालिक अपार्टमेंट
अलकनंदा, नई दिल्ली

प्रो. नित्यानंद तिवारी
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. निर्मला जैन
ए–20/17, कुतुब एन्क्लेव, फेज़–1,
गुड़गाँव, हरियाणा

प्रो. प्रेम शंकर
बी–16, सागर विश्वविद्यालय
परिसर, सागर

प्रो. मुजीब रिज़वी
220, ज़ाकिर नगर
नई दिल्ली

प्रो. मैनेजर पाण्डेय
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. रामस्वरूप चतुर्वेदी
3, बैंक रोड, इलाहाबाद

प्रो. लल्लन राय
3, प्रीत विला, समर हिल,
शिमला

प्रो. शिव कुमार मिश्र
एफ–17, मानसरोवर पार्क कालोनी
पंचायती हॉस्पिटल मार्ग,
वल्लभ विद्यानगर, गुजरात

स्व. शिव प्रसाद सिंह

प्रो. सूरजभान सिंह
आई–27, नारायणा विहार
नई दिल्ली

संकाय सदस्य
प्रो. वी. रा. जगन्नाथन (सेवा निवृत)
प्रो. जवरीमल्ल पारख
प्रो. रीता रानी पालीवाल
प्रो. सत्यकाम
डॉ. राकेश वत्स
डॉ. शत्रुघ्न कुमार
सुश्री स्मिता चतुर्वेदी
डॉ. विमल खांडेकर

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

इकाई लेखक	इकाई संख्या
डॉ. विभास चं. वर्मा व्याख्याता देशबन्धु कॉलेज, दिल्ली	16
डॉ. जवरीमल्ल पारख रीडर, हिन्दी विभाग इं.गां.रा.मु.वि.वि.	17
डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल रीडर, हिन्दी विभाग दिल्ली वि.वि., दिल्ली	18, 19

संपादक
प्रो. निर्मला जैन
भूतपूर्व अध्यक्ष
(हिन्दी विभाग)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

पाठ्यक्रम संयोजक
सुश्री स्मिता चतुर्वेदी
वरिष्ठ व्याख्याता, हिन्दी विभाग
इं.गा.रा.मु.वि.वि.

सामग्री निर्माण

प्रो. वी. रा. जगन्नाथन
भूतपूर्व निदेशक, मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

आवरण
श्री पंकज खरे

श्री कुलवंत सिंह
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

June.2007(Reprint)

ISBN 81-0266-0208 -2

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के बारे में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदानगढ़ी, नई दिल्ली–110 068 से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से प्रो. जवरीमल्ल पारख, निदेशक मानविकी विद्यापीठ द्वारा पुन : मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर कम्पोजिंग : राजश्री कम्प्यूटर्स, 5A/177, W.E.A, करोल बाग, नई दिल्ली–5 फोन : 5787943

"Paper used : Agro based environment friendly"

मुद्रक : करन प्रेस, जैड - 41, ओखला फेस - 2, नई दिल्ली – 110020

खंड 5 का परिचय

एम.ए. हिन्दी के पाठ्यक्रम–6 के अंतर्गत आप हिन्दी साहित्य के इतिहास का अध्ययन कर रहे हैं। इस खंड में आप छायावादोत्तर काव्य प्रवृत्तियों का अध्ययन करेंगे। ये प्रवृत्तियाँ हैं – उत्तर छायावादी कविता, प्रगतिशील कविता, प्रयोगवाद और नयी कविता तथा समकालीन कविता।

इकाई 16 में 'उत्तर छायावादी कविता' की प्रवृत्ति और उसकी पृष्ठभूमि का परिचय दिया गया है। उत्तर–छायावादी कविता ने छायावाद की शिथिल पड़ती संवेदना से अपने को मुक्त करके सहज मानव को काव्य में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया। उत्तर छायावादी कवियों की कविता में सामान्य मानव की प्रेम, मस्ती और उन्मुक्तता का चित्रण मिलता है। इस उन्मुक्तता ने काव्यानुभूति के गठन को बदल दिया। उत्तर छायावादी कविता के प्रमुख कवियों एवं काव्य प्रवृत्तियों का अध्ययन भी आप इस इकाई में करेंगे।

इकाई 17 'प्रगतिशील साहित्य' पर आधारित है। प्रगतिवादी काव्यधारा उत्तर छायावादी काव्य–आंदोलन के समानान्तर ही विकसित हो रही थी। यह एक कविता का आन्दोलन नहीं था अपितु साहित्य की सभी विधाओं पर इसका असर पड़ा था। प्रगतिवाद ने ब्रिटिश साम्राज्यवादी शक्तियों का खुलकर विरोध किया और देश की गरीब जनता को उसके खिलाफ जागृत करने का प्रयत्न किया। प्रगतिशील कविता में मार्क्सवादी सिद्धान्तों के प्रति वैचारिक प्रतिबद्धता देखने को मिलती है।

इकाई 18 में 'प्रयोगवाद और नयी कविता' का विवेचन किया गया है। प्रयोगवाद और नयी कविता आधुनिक हिन्दी काव्य का महत्वपूर्ण दौर है। ये प्रयोगवादी कवि अपने को 'राही नहीं, राहों के अन्वेषी' मानते हैं। 'तार सप्तक' प्रयोगवादी कवियों का घोषणा पत्र है, इस घोषणा पत्र में कवियों ने काव्य रचना की प्रवृत्ति और प्रक्रिया पर अपना मत अभिव्यक्त किया है। जब प्रयोगवादी काव्यांदोलन रूपवादी सीमाओं में बँध गया तब उसी समय काव्य में नयी कविता की प्रस्तावना हुई। नयी कविता और प्रयोगवाद के कवि अलग–अलग नहीं थे। प्रयोगवादी कवियों ने ही नयी कविता आंदोलन को आधार दिया। साथ ही कुछ नये कवि भी इस आन्दोलन से जुड़े। नयी कविता ने ईमानदार अनुभूति की प्रामाणिकता और लघु मानव को काव्य में प्रतिष्ठित किया।

इकाई 19 में आप 'समकालीन कविता' का अध्ययन करेंगे, समकालीन हिन्दी कविता का विकास मुख्यतः 1960 के बाद माना जाता है। सन् 60 के बाद ऐतिहासिक मोहभंग के व्यापक अनुभव के फलस्वरूप कविता की भूमिका में स्पष्ट अन्तर आया। सातवें दशक की समाप्ति के बाद उभरी परिस्थितियों ने एक नये माहौल का निर्माण किया। जिसके परिणामस्वरूप हिन्दी में प्रगतिशील और जनवादी कविता का एक नया उभार सामने आया। बाद के लगभग दो दशक की कविता इसी नये उभार के विकास को सूचित करती है। समकालीन कविता की वास्तविक चुनौती अमानवीयकरण के खिलाफ खड़े होने में नहीं उसे पहचानने की भी है। इन सबकी चर्चा इस इकाई में की जाएगी।

खंड के अंत में इस खंड की इकाइयों से संबंधित कुछ उपयोगी पुस्तकों की सूची दी गई है जो आपके अध्ययन में सहायक होंगी।

इकाई 16 उत्तर-छायावादी कविता

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- उत्तर-छायावादी कविता का तात्पर्य समझ सकेंगे;
- उत्तर-छायावादी कविता की प्रमुख धाराएँ व विशेषताएँ बता सकेंगे;
- उत्तर-छायावादी काल के प्रमुख कवि व उनकी रचनाओं की चर्चा कर सकेंगे;
- उत्तर-छायावादी कविता की काव्यभाषा तथा शिल्प का विवेचन कर सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

सामान्यतः "छायावादोत्तर" संज्ञा से छायावाद के उपरांत आने वाली काव्यधाराओं का बोध होता है। जिसमें बच्चन, दिनकर, अंचल, नवीन आदि की कविता से लेकर प्रगतिवाद, प्रयोगवाद तक शामिल हैं। इसी कारण प्रस्तावित युग के लिए "उत्तर–छायावादी" संज्ञा का भी प्रयोग किया जाता है। अपने सामान्य अर्थ में यह नाम छायावाद के उत्तर चरण का बोध कराता है किंतु प्रयोग की दृष्टि से इसके अंतर्गत छायावादोपरांत रचित राष्ट्रीय–सांस्कृतिक कविताएँ तथा वैयक्तिक प्रगीतों की वह धारा आती है जिसे "जवानी व मस्ती का काव्य" भी कहा गया है। यद्यपि कालक्रम की दृष्टि से एवं अन्यथा भी प्रगतिवादी

वाणी दी गई। दूसरे, कविता में आध्यात्मिक अनुषंग खत्म होते गए और अनुभूत सत्यों की सहज–सरल अभिव्यक्ति आरंभ हुई। व्यक्तिगत व्यथाएँ व्यक्तिगत अनुभूति के रूप में ही व्यक्त की जाने लगीं और उनके लिए किसी आध्यात्मिकता का सहारा लेने की जरूरत खत्म हो गई।

"कितना अकेला आज मैं
संघर्ष में टूटा हुआ
दुर्भाग्य से लूटा हुआ
परिवार से छूटा हुआ, किन्तु अकेला आज मैं।"

– बच्चन

छायावादी कविता का लक्ष्य जहाँ "एक कर दे पृथ्वी–आकाश" था वहाँ उत्तर–छायावादी कविता "मिट्टी की ओर" अग्रसर हुई। वास्तविकता के इस आग्रह के कारण काव्य में कल्पना और स्वप्न की भूमिका अप्रासंगिक जान पड़ने लगी और आध्यात्मिकता कविता के आंतरिक अनुभव के बजाय ओढ़ी हुई दार्शनिकता के रूप में व्यक्त होने लगी। इसके साथ ही वास्तविकता के आग्रह ने काव्य का वस्तु जगत् व्यापक बनाया।

"व्योम कुंजों की परी अयि कल्पने,
भूमि को निज स्वर्ग पर ललचा नहीं
उड़ न सकते हम तुम्हारे स्वर्ग तक
शक्ति है तो आ बसा अलका यहीं।"

– दिनकर

16.3.2 संघर्ष की अभिव्यक्ति

इस साहित्य में युगीन वास्तविकता सामाजिक व राजनीतिक आंदोलनों से प्रेरित होकर काव्य में संघर्ष के सीधे चित्रण के रूप में व्यक्त हुई। राष्ट्रीय संघर्ष ने काव्य में उग्र राष्ट्रीय स्वरों को ध्वनित किया।

"क्या? देख न सकती जंजीरों का गहना।
हथकड़ियाँ क्यों? यह ब्रिटिश राज्य का गहना।।
कोल्हू का चर्रक चूँ? जीवन की तान।
मिट्टी पर लिखे अंगुलियों ने क्या गान?
हूँ मोट खींचता लगा पेट पर जूआ।
खाली करता हूँ ब्रिटिश राज्य का कूआ।।"

– माखन लाल चतुर्वेदी
(कैदी और कोकिला)

या

"हे बलि वेदी, सखे प्रज्ज्वलित माँग रही इंधन क्षण–क्षण,
आओ युवक, लगा दो तो तुम अपने यौवन का इंधन।
भस्मसात् हो जाने दो ये प्रबल उमंगें जीवन की,
अरे सुलगने दो बलिवेदी, चढ़ने दो बलि जीवन की।"

– नवीन

वैयक्तिक स्तर पर सामाजिक रूढ़ियों के सीधे नकार तथा मर्यादाओं की उपेक्षा के रूप में यह संघर्ष अभिव्यक्त हुआ। इस कविता में संघर्ष और तज्जन्य असफलता से उत्पन्न निराशा, हताशा और अवसाद के भी चित्र मिलते हैं। बच्चन, अंचल, नवीन आदि की कविताओं में इसके उदाहरण मिलते हैं।

'है नहीं स्कंद पर उत्तरीय,
    लिपटा है शव आकांक्षा का,
मैं मानव विभ्रम डोल रहा,
    लादे बोझा निज वांछा का,

मेरी असफल आकांक्षा यह
असमय मर गई बिना बोले
पड़ गई गाँठ मेरे हिय में
उसको कोई कैसे खोले?"

— नवीन

16.3.3 हृदय और बुद्धि का द्वन्द्व

बदले हुए यथार्थ में पुराने आदर्शों को यथावत् स्वीकार कर लेने के कारण जो असामंजस्य उत्पन्न हुआ उसका एक लक्ष्य हृदय और बुद्धि के द्वंद्व के रूप में प्रकट हुआ। इस द्वंद्व की शुरुआत "कामायनी" से देखी जा सकती है। इस द्वंद्व में उत्तर–छायावादी कवियों ने प्रायः "कामायनी" के पथ का ही अनुसरण कर हृदय या भावना को बुद्धि या तर्क पर वरीयता दी। यह हृदयवाद या बुद्धि–विरोध इस युग में दिनकर, बच्चन, अंचल, नरेन्द्र, नवीन सबमें कुछ न कुछ अंशों में हैं।

"ज्ञान की आराधना दिन का शयन है
क्लेश से निस्तार केवल कर्म से है।
दर्शनों से सिद्धियाँ किसको मिली हैं?
जीव का उद्धार केवल धर्म से है।
लिख सको तो उंगलियों से खोदकर,
एक छोटा काव्य भूतल पर लिखो।
बुद्धि के बल पर जिसे पहले लिखा था,
आज उसको बाहु के बल पर लिखो।"

— दिनकर (चक्रवाल)

बुद्धि इन्हें अक्सर बेधड़क कर्म–पथ पर जाने से बरजती है, इसीलिए 'मानव–धर्म' दर्शनों से अधिक वरेण्य जान पड़ता है और बुद्धि–बल की अपेक्षा रक्त के आवेग से प्रेरित बाहुबल की आवश्यकता जान पड़ती है।

विडंबना यह थी कि जिस बदलते यथार्थ के कारण यह प्रवृत्ति आ रही थी, वह यथार्थ स्वयं तर्क और बौद्धिकता प्रेरित आधुनिक ज्ञान के दबाव में निर्मित हो रहा था। हृदय पर बल देना अपनी भावनाओं और नीयत की ईमानदारी पर बल देना था। उद्देश्य की जाँच बौद्धिक विवेक की माँग करती थी जिससे ये बचते रहे। हृदय और बुद्धि के द्वंद्व को हृदयवाद के सरलीकरण से परिभाषित करने के बावजूद ये उस "रिक्तता" को नहीं भर सके जो कल्पनाशील और राजनैतिक के बीच में दरार पड़ जाने से उत्पन्न हुई थी।

"बेचैन हैं हवाएँ, सब ओर बेकली है,
कोई नहीं बताता, किश्ती किधर चली है?
मँझधार है, भँवर है, या पास है किनारा?
यह नाश आ रहा या सौभाग्य का सितारा?
आकाश पर अनल से लिख दे अदृष्ट मेरा,
भगवान! इस नदी को भरमा न दे अँधेरा।"

— दिनकर (सामधेनी)

तथा

"पाँव चलने को विवश थे
जब विवेक–विहीन था मन,
आज तो मस्तिष्क दूषित
कर चुके पथ के मलिक कण"

— बच्चन (अभिनव सोपान)

मन का यह विभाजन ऊपरी और भीतरी के द्वंद्व में व्यक्त हुआ। ऊपरी रूप आदर्श, मर्यादा, ज्ञान, सामाजिकता का प्रतिनिधित्व करता था, अतएव क्रूर जड़ और कठोर था वहीं भीतरी रूप ही असली और सहज माना गया। उत्तर–छायावादी कवियों ने भीतरी मनुष्य और उसकी सहजता को ही प्रामाणिकता दी।

16.3.4 सहज-सरल मनुष्य

उत्तर–छायावादी कविता मनुष्य के इसी भीतरी रूप या सहज–सरल मनुष्य की कविता है। यह मनुष्य अपनी हृदय की पुकार सुनता है, रक्त के आवेग का विश्वास करता है। अपनी भावनाओं को छिपाना जानता नहीं, अपने को सच्चा या बड़ा बताने के लिए छल–छद्म नहीं करता जो कि बद्धि के व्यापार हैं :–

"रक्त बुद्धि से अधिक बली है और अधिक ज्ञानी भी,
क्योंकि बुद्धि सोचती और शोणित अनुभव करता है।"

– दिनकर

"पाप ही की गैल पर
चलते हुए ये पाँव मेरे
हँस रहे है उन पगों पर
जो बँधे हैं आज घर में ।"

– बच्चन

या

"हम सब कुछ कर के भी मानव,
हमीं देवता, हम ही दानव,
हमीं स्वर्ग की, हमीं नरक की क्षण भर में सीमा छू आते!
हम कब अपनी बात छिपाते?"

– बच्चन (निशा–निमंत्रण)

तर्क–जाल में उलझाव इसका पथ नहीं, वह तो अपनी प्रवृत्तियों के बहाव के अनुसार आगे बढ़ता है फिर चाहे वह "अग्निपथ" ही क्यों न हो। अपने खुलेपन, ईमानदारी, प्रवृत्तियों के सहज स्वीकार के कारण उसे अक्सर गलत समझा जाता है किंतु वह इससे तनिक भी विचलित नहीं होता क्योंकि उसकी नीयत साफ है।

16.3.5 आवेग, मस्ती और फक्कड़पन

हृदय के आवेग को प्रमुखता देने तथा लक्ष्यों व आदर्शों को बिना किसी द्वंद्व के स्वीकार कर लेने के कारण इस काव्य में एक प्रकार की मस्ती, फक्कड़पन की प्रवृत्ति मिलती है। यह मस्ती जीवन–व्यापार के प्रवाह के रास्ते के दार्शनिक प्रश्नों की अनदेखी करती है। फलतः काव्य से गंभीरता अनुपस्थित होने लगती है और उसकी भरपाई एक आवेगमयता या संवेग से की जाती है–

"चीर दूँगा विश्व के तूफान को!
आज उन्मुख हूँ क्षितिज के पान को
बस न पूछो प्राण! सीमाहीन हूँ,
दलित कर दूँगा गगन के गान को!"

– अंचल

कहीं दार्शनिक प्रश्न आते भी हैं तो वहाँ अनुभूति के बजाय शास्त्र महत्त्वपूर्ण हो जाता है। नवीन की कविताओं में 'क्वासि' या 'कोऽहं' सोऽहं की मुद्राएँ इसी प्रवृत्ति की द्योतक हैं, वहाँ सीधे औपनिषदिक शब्दावली उठा ली गई है। इस प्रकार कविता से विवेक अपदस्थ होने लगता है और एक विचारक्षीणता हावी होने लगती है।

आपने देखा कि उत्तर–छायावादी कविता छायावादी कविता से विकसित होती है पर यह विकास विभिन्न धाराओं में होता है। एक तरफ तो छायावादी स्वच्छन्दता या रूढ़ि–विद्रोह को यथार्थ–चेतना का

पुष्टतर आधार प्राप्त होता है जिससे काव्य का वस्तु–जगत काफी व्यापक होता है तो दूसरी तरफ बदली यथार्थ चेतना के अनुरूप नया काव्य–विधान विकसित नहीं हो पाता है। दरअसल जब तक स्थापित मूल्यों, आदर्शों को प्रश्न–चिह्नित नहीं किया जाता, काव्य के विधान में परिवर्तन नहीं आ सकता। इस समय यथार्थ और आधुनिकता का दबाव एक नीति–निरपेक्ष मानवतावाद को काव्य में अभिव्यक्ति दे रहा था किंतु पुरानी नैतिकता के आदर्शों को अस्वीकार नहीं किया जा रहा था। इस दृष्टि से उत्तर–छायावादी कविता छायावादी कविता और नई कविता के बीच की कड़ी लगती है। विजयदेवनारायण साही ने अपने प्रसिद्ध निबंध "लघुमानव के बहाने हिंदी कविता पर एक बहस" में इस काव्य की इसी दृष्टि से व्याख्या की है।

16.4 प्रमुख धाराएँ

छायावाद–युग की परिव्याप्ति 1936 ई. तक मानी जाती है। 1936 ई. में प्रमुख छायावादी कवि पंत द्वारा रचित "युगांत" के प्रकाशन के साथ छायावाद–युग का औपचारिक अंत माना जाता है। यद्यपि छायावादोत्तर काव्यधारा के लक्षण 1930–31 से ही प्रकट होने शुरू हो गए थे परंतु 1936 के बाद ही छायावादी काव्यधारा का विकास अनेकमुखी हुआ। राष्ट्रीय–सांस्कृतिक कविता, प्रेम और मस्ती का काव्य (इसे हालावाद भी कहा गया) तथा प्रगतिवाद आदि काव्यधाराएँ प्रायः एक साथ अवतरित हुईं। इनमें पहली दो काव्य–प्रवृत्तियाँ पूर्ववर्ती काव्य–प्रवृत्तियों का ही विकास हैं जबकि अन्य का आविर्भाव ऐतिहासिक दबावों के कारण छायावाद की प्रतिक्रिया और प्रभाव से हुआ। इस इकाई में हम राष्ट्रीय–सांस्कृतिक कविता और प्रेम और मस्ती के काव्य का अध्ययन करेंगे। मुख्यतः उत्तर–छायावादी काव्य में यही धाराएँ हैं। प्रगतिवादी, प्रयोगवादी कविताएँ जो छायावाद के विरोध और प्रतिक्रिया में अधिकांशतः लिखी गई (यद्यपि छायावाद का प्रभाव उन पर पड़ा ही है) सामान्यतः छायावादोत्तर काव्य के अंतर्गत आती है।

16.5 राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता

आधुनिक हिंदी कविता में राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति तो भारतेंदु काल से ही आरंभ हो गई थी परंतु उसका स्वरूप क्रमशः बदलता रहा है। द्विवेदीयुगीन राष्ट्रीयता अतीत–गौरव के बोध से परिचालित थी तो छायावादयुगीन राष्ट्रीयता विशुद्ध मानव–ऐक्य का आदर्श लेकर चली है। द्विवेदीयुगीन राष्ट्रीयता और छायावादी राष्ट्रीयता का यह अंतर नंददुलारे वाजपेयी ने मैथिलीशरण गुप्त की कविता "नीलांबर परिधान हरित पट पर सुंदर है" तथा प्रसाद व निराला की क्रमशः "अरुण यह मधुमय देश" तथा "भारति जय–विजय करे" कविताओं की तुलना करते हुए दिखाया है कि छायावादी राष्ट्रीयता में प्रादेशिकता का आग्रह कम है और विशाल मानव–ऐक्य की भावना है। विवेच्य काल की राष्ट्रीयता स्वतंत्रता–प्राप्ति की प्रत्याशा की तीव्रता और परतंत्रता की बेड़ियों को तोड़ फेंकने के उत्साह से संवलित है। इसके साथ ही उसमें एक सामाजिक चेतना का प्राधान्य भी है। यद्यपि द्विवेदी युगीन प्रबंध–काव्यों की तरह इस युग में भी अतीत व पौराणिकता पर आश्रित प्रबंध काव्य लिखे गए किंतु उनमें अतीत के गौरव गान की अपेक्षा आधुनिक समस्याएँ ही प्रधान हैं। वास्तविकता का आग्रह, यथार्थ–चेतना की प्रखरता के साथ–साथ संघर्षात्मकता की अभिव्यक्ति और आवेग प्रधानता इन कविताओं की सामान्य विशेषताएँ हैं। इस धारा के प्रमुख कवियों में मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा "नवीन" छायावाद एवं उससे पहले से ही इस प्रकार की कविताएँ लिख रहे थे। इनमें मैथिलीशरण गुप्त के काव्य का उत्तमांश पहले ही प्रकाशित हो चुका था। माखनलाल चतुर्वेदी उर्फ "एक भारतीय आत्मा" तथा बालकृष्ण शर्मा "नवीन" के कृतित्व में काफी समानता है। इन्होंने विद्रोह, देशभक्ति और प्रेम की कई कविताएँ लिखी हैं। उनकी "पुष्प की अभिलाषा", "कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल–पुथल मच जाए" जैसी कविताएँ बहुत प्रसिद्ध हुईं –

> "नियम और उपनियमों के ये
> बंधन टूक–टूक हो जाएँ
> विश्वभर की पोषक वीणा के

ये सब तार मूक हो जाएँ
कवि कुछ ऐसी तान सुना दो
जिससे उथल–पुथल मच जाए!"

— नवीन

किंतु इस युग की धारा का सर्वाधिक प्रतिनिधित्व करने वाले कवि हैं — रामधारी सिंह "दिनकर"। अपनी छोटी कविताओं तथा प्रबंध–काव्यों दोनों में ही दिनकर के काव्य का ओज व वक्तृत्व कला उस युग की उग्र राष्ट्रीय चेतना का निर्वहण करती है। राजनैतिक कविताओं में सियाराम शरण गुप्त व सोहनलाल द्विवेदी की कविताएँ गाँधीवादी चेतना की वाहक हैं —

"न हाथ एक शस्त्र हो, न साथ एक अस्त्र हो।
न अन्न नीर वस्त्र हो, हटो नहीं, डटो वहीं,
बढ़े चलो, बढ़े चलो"

— सोहनलाल द्विवेदी (भैरवी)

इस धारा की कविताओं में पराधीनता के प्रति आक्रोश, राजनैतिक विद्रोह, अतीत का गौरव–गान, बलिदान की आकांक्षा, सामाजिक विषमता व कुरीतियों का विरोध, के साथ–साथ इस वर्ग की कविताओं में तात्कालिक समाधान के प्रति एक आग्रह दिखाई पड़ता है जो कि इन कविताओं में एक उद्दाम आवेग भरता है। इसी तात्कालिक समाधान की आशा के टूटने पर निराशा और हताशा के भी स्वर निकलते हैं–

"आज खड्ग की धार कुंठित है खाली तूणीर हुआ।
विजय–पताका झुकी हुई है लक्ष्य भ्रष्ट यह तीर हुआ।।"

नवीन (कुंकुम)

सामाजिक चेतना के स्वर जिन कवियों में प्रमुख थे वे प्रगतिशील काव्यधारा से भी जुड़े यथा — शिवमंगल सिंह "सुमन" अंचल, नरेन्द्र शर्मा आदि। सांस्कृतिक अतीत के गौरव–गान से अलग तात्कालिक राष्ट्रीय समस्याओं को अतीत में प्रक्षेपित कर कुछ महत्वपूर्ण प्रबंध काव्य लिखे गए यथा — कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी, जयभारत, नकुल, विक्रमादित्य आदि।

16.6 प्रेम और मस्ती का काव्य

वैयक्तिक प्रेम और तज्जन्य निराशा के गीत छायावाद से ही रचे जाने आरंभ हो गए थे किंतु इन गीतों का प्रेम नितांत लौकिक धरातल का प्रेम बनकर उत्तर–छायावादी काव्य में ही प्रकट हुआ। छायावाद की आदर्श चेतना लौकिक अनुभूति को आध्यात्मिक आभा दे देती थी या फिर उनका दार्शनिकीकरण करती थी जैसा कि प्रसाद के "आँसू" जैसे काव्यों में हुआ है। किंतु उत्तर–छायावादी कविता मन और शरीर तक ही सीमित रही है। सुंदर के प्रति सहज आकर्षण, उसकी प्राप्ति की आकांक्षा तथा इस प्रयत्न की असफलता से उत्पन्न निराशा का सीधा सा क्रम इन कविताओं में है। एक उद्दाम मस्ती या मादकता का आवेग इन कविताओं की विशेषता है। जीवन के अनुभवों की अकुंठ अभिव्यक्ति में जीवन के उद्देश्य या जीवन–दृष्टि का प्रश्न इनके सम्मुख प्रधान नहीं है। अपने फक्कड़पन में इन्हें जगत् या लोकापवादों की कोई चिंता नहीं है। ये अपने प्रेम की अभिव्यक्ति में कोई दुराव–छिपाव नहीं चाहते —

"मैं छिपाना जानता तो जग मुझे साधू समझता।
शत्रु मेरा बन गया है छलरहित व्यवहार मेरा।"

— बच्चन

अपनी मस्ती के आलम में वह यथार्थ को भूल जाना चाहता है

"हो जाने दे गर्क नशे में, मत पड़ने दे फर्क नशे में
ज्ञान ध्यान पूजा पोथी के फट जाने दे वर्क नशे में
ऐसी पिला कि विश्व हो उठे एक बार तो मतवाला
साकी अब कैसा विलम्ब भर–भर ला तन्मयता–हाला।"

— नवीन

मस्ती, नशे और खुमार के इस काव्य की सर्वाधिक लोकप्रिय अभिव्यक्ति हरिवंशराय "बच्चन" की "मधुशाला" में हुई। इसके प्रभाव के कारण कई बार व्यंग्य से इस काव्यधारा को "हालावाद" कहा जाता है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस संबंध में कहा है – "वस्तुतः यह "हाला" एक प्रतीक मात्र है जो तत्कालीन प्रचलित झूठी आध्यात्मिकता के प्रतिवाद का एक प्रतीक मात्र था। मूलतः बच्चन की कविता मस्ती, उमंग और उल्लास की कविता है।" इस असंकुचित और आत्मकेंद्रित मस्ती का एक और रूप भगवतीचरण वर्मा की कविताओं में दिखाई पड़ता है –

"हम दीवानों की क्या हस्ती,
हम आज यहाँ कल वहाँ चले
मस्ती का आलम साथ चला
हम धूल उड़ाते जहाँ चले।"

बालकृष्ण शर्मा "नवीन" की "हम अनिकेतन, हम अनिकेतन" भी इसी घर फूँक मस्ती की कविताएँ हैं। नरेन्द्र शर्मा व अंचल आदि की कविताओं में अकुंठ प्रेम और यथार्थ की टकराहट से उसके टूक–टूक हो जाने के वर्णन हैं –

"टूट गया मधुघट नसीब–सा
जो मैं उसका एक टूक था
छलनी हुआ कलेजा जिसका
उसकी अंतिम एक हूक था।"

— नरेन्द्र शर्मा

"पर मिलें कब प्राण के वे मीत वे मन के निवासी!
है उमंगों के प्रलय में मिट रही पगली जवानी
जल रहा प्यासा हिया, मेरे पिया की यह निशानी।"

— अंचल

मस्ती, फक्कड़पन, आवेग में हृदयवाद उस युग में हावी हुआ दिखाई पड़ता है।

"पढ़ो रक्त की भाषा को विश्वास करो इस लिपि का
यह भाषा, यह लिपि मानस को न भरमायेगी
छली बुद्धि की भाँति, जिसे सुख–दुख से भरे भुवन में
पाप दीखता वहाँ जहाँ सुंदरता हुलस रही है,
और पुण्य–चय वहाँ जहाँ कंकाल, कुलिश, काँटे हैं।"

–दिनकर

बुद्धि का यह विरोध और प्रवृत्तियों पर यह विश्वास क्षणभंगुर जीवन का सत्य जानने के कारण भी है–

"मिट्टी का तन, मस्ती का मन, क्षण भर जीवन, मेरा परिचय"

–बच्चन

बच्चन इसी मस्ती में सिंधु की लहरों के निमंत्रण को अनदेखा कर तीर पर रुकना नहीं चाहते किंतु सिंधु का वह हिल्लोल कम्पन पूरे जगत पर प्रतिच्छायित है और बच्चन के हृदय की पुकारें उसी की प्रतिध्वनियाँ हैं–

"रात का अंतिम प्रहर है
झिलमिलाते हैं सितारे
वक्ष पर युग–बाहु बाँधे
मैं खड़ा सागर किनारे

शून्य में भरता उदधि
उर की रहस्यमयी पुकारें
इन पुकारों की प्रतिध्वनि
हो रही मेरे हृदय में
सिंधु का हिल्लोल कंपन
तीर पर कैसे रुकूँ मैं
आज लहरों में निमंत्रण।"

छायावादी कविता में जहाँ कवि नाविक से भुलावा देकर "उस पार" ले जाने का आग्रह करता था वहाँ उत्तर–छायावादी कवि उस पार की बजाय "इस पार" के ही भोग को तरजीह देता है –

"इस पार प्रिये मधु है, तुम हो
उस पार न जाने क्या होगा?" – बच्चन

छायावादी वैयक्तिक प्रेम–गीतों से इस कविता का यह महत्वपूर्ण अंतर है। यह लौकिक धरातल के प्रेम तथा उससे उत्पन्न उल्लास, मस्ती, मादकता, निराशा, हताशा, कुंठा की कविता है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि इस धारा में जो निराशा और पराजय का स्वर है उसका कारण सिर्फ प्रेम की असफलता नहीं वह जीवन के अन्य संदर्भों से भी जुड़ा है। यह स्वच्छंदतावादी कविता ही है। साही ने इस संदर्भ में इन कवियों की अंग्रेजी रोमांटिक कवि बायरन से तुलना की है। अंतर सिर्फ गंभीरता का है क्योंकि छायावादी मूल्यों से टकराहट की "क्राइसिस" में इन कवियों ने "क्राइसिस" की उपेक्षा करके "खुमारी और जवानी" का सहारा लिया और "बहुत गंभीर होकर अगंभीरता को अपनाया"। "बच्चन की रूपकोक्तियाँ, दिनकर का रिटॉरिक, भगवतीचरण वर्मा की लापरवाह दीवानगी, नवीन का वलवला, अंचल का उबाल, नरेन्द्र शर्मा का नफीस ऐश्वर्य – इन सब में गंभीरता के अभाव की छाया है। कुल मिलाकर लगता है, जैसे अंग्रेजी कवि बायरन के पचासों टुकड़े कर दिए गए हों और उनमें से कुछ–कुछ टुकड़े इन तमाम कवियों की "जवानी" में अलग–अलग जज्ब कर दिए गए हों।" इस वैचारिक धारा में अक्सर विद्रोह के स्वर भी सुनाई पड़ते हैं किंतु वह विद्रोह सामाजिक असंतोष और व्यक्तिगत अस्वीकृति से उत्पन्न होते हुए भी भवावेशजन्य ही है, उसमें कोई रचनात्मक चिंतन या दृष्टि नहीं मिलती। आत्मानुभूति की सघनता, भावों की सरलता और आवेग की तीव्रता ही इस धारा की लोकप्रियता का मुख्य कारण है।

16.7 उत्तर-छायावादी काव्यभाषा व शिल्प

आधुनिक हिंदी कविता की सर्वाधिक लोकप्रिय काव्यधारा उत्तर–छायावादी काव्यधारा ही रही है। इसका कारण एक तरफ इसकी आवेगमयता और भाव–सरलता है तो दूसरी तरफ इसकी काव्यभाषा की सफाई और सरलता भी है। छायावाद से वैयक्तिक प्रगीतों की जो विरासत इसे मिली उसे इसने और भी समृद्ध किया। प्रबंध काव्यों के स्वरूप में भी उत्तर–छायावादी कविता थोड़ा बदलाव लाती है।

16.7.1 काव्यभाषा

छायावादी कवियों ने अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए एक नई काव्यभाषा का निर्माण किया था। इस नई काव्य–भाषा के पीछे छायावादी कवियों की नई सौंदर्याभिरुचि का भी हाथ था। खड़ी बोली कविता को कोमलकांत पदावली से समन्वित करने के लिए उन्होंने संस्कृत, बांग्ला और अंग्रेजी से प्रभाव–ग्रहण किए, उन्हें खड़ी बोली के प्रकृति के अनुरूप ढाल कर उनका प्रयोग किया। द्विवेदी युगीन तत्सम–बहुलता और छायावादी तत्सम–प्रधानता के बीच यह अंतर है। छायावाद के कवियों के सम्मुख

भाषा की एक अवधारणा यह थी कि भाषा वास्तविकता का उद्घाटन करती है। भाषा वास्तविकता को प्रतिबिंबित करती है, इस अवधारणा से इंकार न करते हुए भी छायावादियों ने इसकी उपेक्षा की। वास्तव में शब्द की पृथक अर्थ–छायाएँ होती हैं, जो वास्तविकता से संबद्ध होती हैं। भाषा की यह प्रतिभा उसकी आंतरिक प्रतिभा होती है। भाषा की इस आंतरिक प्रतिभा का उपयोग छायावादी कवियों ने वास्तविकता की संभावनाओं के उद्घाटन के लिए किया । इस प्रवृत्ति के बलवती होने पर भाषा की आंतरिक प्रतिभा पर ही जोर पड़ने लगा और भाषा वस्तु–जगत से स्वाधीन होने लगी। फलतः काव्य में अमूर्त्तन और आत्मग्रस्तता आने लगी। उत्तर–छायावादी काव्यभाषा में इस अमूर्त्तन से मुक्ति के प्रयास स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। उत्तर–छायावादी काव्यभाषा में एक खुलेपन, एक सफाई का आग्रह स्पष्ट है। छायावादी तत्सम शब्दावली के इर्द–गिर्द एक प्रभामंडल सा व्याप्त होता है जो अर्थ की एक अन्य गौरवपूर्ण दुनिया बनाता है। उत्तर–छायावादी काव्यभाषा में यह तत्सम–बहुलता उतनी नहीं है। किंतु जैसा कि साही ने कहा है – "छायावाद ने संस्कृत शब्दों का प्रयोग उनके अभिधार्थ या लक्षणार्थ के ही लिए नहीं किया, बल्कि एक अलग प्रभामंडल के लिए किया जिसकी शर्त ही यही थी कि वह ठेठ शब्दों से स्रोत में ही अलग दीखे।... इसी बहुलता को कम करने का काम दिनकर आदि ने किया। लेकिन स्रोत के प्रभामंडल का अतिरिक्त लाभ उन्होंने भी उठाया।" "तान–तान फण व्याल कि तुझ पर मैं बाँसुरी बजाऊँ" जैसी कविता में "व्याल" और "फण" के साथ लिपटे प्रभामंडल के अर्थ गौरव का अतिरिक्त लाभ दिनकर उठाते हैं। किंतु कुल मिलाकर, उत्तर–छायावादी कविता में तत्सम शब्दों के प्रयोग में कमी आयी और तत्समेतर शब्दों का प्रयोग बढ़ा।

संस्कृत शब्दों में कमी के साथ–साथ बच्चन, अंचल, भगवतीचरण वर्मा ने उर्दू कविता की खुमारी और मादकता से हिंदी कविता को संपन्न किया।
उर्दू शब्दावली की सहजता इन कवियों में मिलती है, यथा –

> "हाथों में आने से पहले नाज़ दिखाएगा प्याला
> अधरों पर आने से पहले अदा दिखाएगी हाला"
> नाज़ अदा अंदाज़ों से अब हाय, पिलाना दूर हुआ
> अब तो कर देती है केवल फ़र्ज़ अदायी मधुशाला।"
>
> – बच्चन

बच्चन की "मधुशाला" तथा भगवतीचरण वर्मा की "दीवानों की हस्ती" कविता में उर्दू शब्दावली, लय और मुहावरों के प्रयोग ने काव्यभाषा के खुलेपन और प्रवाहमयता को और भी समृद्ध किया। नरेन्द्र शर्मा की कविताओं में "कोट" "बटनहोल" जैसे अंग्रेजी शब्द भी मिल जाते हैं। भाषा के स्तर पर उत्तर–छायावादी कवियों ने संप्रेषणीयता और सहजता का सदा ध्यान रखा है।

16.7.2 लय और छंद

छंदों से मुक्ति की प्रेरणा और लय का अनुधावन हिंदी कविता में छायावाद की देन है। छंदो की विविधता और पुराने छंदों का समयानुकूल प्रयोग भी छायावाद की विशेषता है। उत्तर–छायावादी कविता ने भी छंदों की इस विविधता को अपनाया है और अनेक रमणीय गीतों की रचना की है। पद्धड़िया, मत्तगयंद, तथा मिश्रित छंदों के उदाहरण बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, भगवतीचरण वर्मा के गीतों में हैं। बच्चन ने उर्दू की रुबाइयों और ग़जलों का प्रयोग अपने गीतों में किया है। छायावादी कविताओं में छंद या मुक्त–छंद की लय पूर्णतः प्रवाहपूर्ण नहीं है, उसके प्रवाह में कहीं–कहीं जोड़ मिलते हैं परंतु उत्तर–छायावादी कवियों की लय का प्रवाह कहीं बाधित नहीं होता।

16.7.3 प्रबंध-विधान

"कामायनी" के उपरांत परंपरागत विधान में प्रबंध काव्य लिखना अप्रासंगिक हो गया। छायावाद ने प्रबंध–कविता को अपनी एक देन "लंबी कविता" के रूप में भी दी। उत्तर–छायावादी कविता की प्रबंध रचनाएँ द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता और छायावादी लाक्षणिकता की मध्यभूमि पर रचित हैं। दिनकर की "कुरुक्षेत्र" व "उर्वशी" में प्रबंधत्व काफी क्षीण है। "रश्मिरथी" तथा गुप्तजी की "जयभारत", "विष्णुप्रिया", गुरुभक्त सिंह "भक्त" की "विक्रमादित्य", मोहनलाल महतो "वियोगी" की "आर्यावर्त", सियारामशरण गुप्त

की ''उन्मुक्त'', केदारनाथ मिश्र, ''प्रभात'' की ''ऋतंभरा'', नरेन्द्र शर्मा की ''द्रौपदी'' जैसी प्रबंध रचनाएँ द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता की ओर झुकी हुई हैं। परंतु इनमें राष्ट्रीय व सामाजिक चेतना पहले से अधिक प्रखर है। ''उर्वशी'', ''ऋतंभरा'' जैसी कृतियों की रचना के मूल में ''कामायनी'' से स्पर्द्धा का भाव भी है। युद्ध की समस्या, मानवता का भविष्य तथा महाभारत–पुराणों का आधुनिक आख्यान इन प्रबंध–काव्यों की विषय–वस्तु है।

काव्य–रचना का कोई नया विधान इन उत्तर–छायावादी कवियों ने नहीं रचा। अपने युग की समस्याओं का समाधान जिस प्रकार पुराने आदर्शों व लक्ष्यों के स्वीकार के सरलीकरण के साथ किया, उसी प्रकार काव्य–विधान के पुराने रूपों को भी सहजता से अपना लिया। शिल्प के स्तर पर महत्वपूर्ण अंतर सिर्फ काव्यभाषा के खुलेपन और प्रवाहमयता में है। यह अंतर भी वास्तविकता के बढ़ते दबाव के कारण उपस्थित हुआ। दरअसल छायावाद ने अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल जिस काव्य–विधान को निर्मित किया था, उसकी संभावनाओं का छायावादी कविता ने पूरा उपयोग स्वयं कर लिया था और निराला तथा पंत जैसे छायावादी भी स्वयं उस विधान को छोड़ रहे थे। उत्तर–छायावादी कविता ने इस स्तर पर कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया। फिर भी संप्रेषणीयता का जो स्तर उन्होंने ग्रहण किया वह उनकी उपलब्धि कही जा सकती है।

16.8 प्रमुख कवि

उत्तर–छायावादी कविता के प्रमुख कवि निम्नलिखित हैं–

16.8.1 रामधारी सिंह ''दिनकर''

उत्तर–छायावादी कविता के सर्वप्रमुख कवियों में दिनकर हैं। दिनकर मुख्यतः अपनी कविताओं में वक्तृत्व–कला (Rhetoric) के लिए विख्यात हैं। ओज प्रधान राष्ट्रीयता और सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार इनकी कविताओं का मुख्य स्वर है। साथ ही दिनकर प्रेम की मस्ती के भी गीतकार हैं। ''उर्वशी'' तथा ''गीत–अगीत'' के रचयिता दिनकर का मुख्य स्वर ''हुँकार'', ''रेणुका'', ''चक्रवाल'', ''कुरुक्षेत्र'' और ''रश्मिरथी'' जैसे काव्यों में फूटता है। वैयक्तिक आवेग की कमी उनमें नहीं है –

> ''सुनूँ क्या सिन्धु मैं गर्जन तुम्हारा
> स्वयं युग–धर्म की हुँकार हूँ मैं''।

16.8.2 हरिवंशराय ''बच्चन''

दिनकर के साथ–साथ बच्चन भी इस धारा के प्रतिनिधि कवि हैं। बच्चन मुख्यतः प्रेम और मस्ती के गायक हैं। उमर खैयाम की रुबाइयों के अनुवाद, मधुशाला, मधुकलश जैसी रचनाओं की मधुचर्या के कारण इनके काव्य को उपहासवश ''हालावाद'' भी कहा गया। ''निशा–निमंत्रण'', ''एकांत–संगीत'', ''आकुल–अंतर'' के गीतों में बच्चन प्रेम की निराशा, कुंठा के साथ जगत् के बंधन और अपनी निश्छलता के गीत गाते दिखाई पड़ते हैं। योग और भोग के द्वंद्व में जगत् की नश्वरता का ज्ञान इन्हें भोग की ओर ही प्रेरित करता है।

छायावादियों के विपरीत ये ''इस पार'' के कवि हैं। ''सूत की माला'' की इनकी कविताओं में राष्ट्रीय–सांस्कृतिक स्वर भी सुनाई पड़ता है।

16.8.3 माखनलाल चतुर्वेदी व बालकृष्ण शर्मा ''नवीन''

इन दोनों कवियों में काफी समानताएँ हैं। ये दोनों छायावाद युग से ही कविकर्म में रत थे। इसके अलावा ये दोनों ही सक्रिय राजनीति से जुड़े हुए थे। दोनों की कविताओं में राष्ट्रीयता का स्वर प्रबल है किंतु दोनों ने ही प्रेम और मस्ती के तराने भी लिखे हैं। माखनलाल चतुर्वेदी उर्फ ''भारतीय आत्मा'' की रचनाएँ हैं– ''माता'', ''समर्पण'', ''युगचरण''। इनकी ''कैदी और कोकिला'' तथा ''पुष्प की अभिलाषा'' कविताएँ काफी प्रसिद्ध हैं। बालकृष्ण शर्मा ''नवीन'' ने ''अपलक''. क्वासि'', ''हम विषपायी जनम के'' आदि कृतियों की रचना की है।

16.8.4 नरेन्द्र शर्मा

"प्रभात फेरी", "प्रवासी के गीत", "पलाशवन", "मिट्टी के फूल", "कदलीवन" जैसी कृतियों के रचयिता नरेन्द्र शर्मा के गीतों में प्रकृति–प्रेम, मानव–सौंदर्य, तज्जन्य विरह–मिलन की अनुभूतियाँ बड़ी आत्मीयता और सरल प्रवहमान भाषा में व्यक्त हुई हैं। रूमानी दृष्टि के साथ–साथ इनकी कविताओं में सामाजिक स्वर भी सुनाई पड़ता है।

16.8.5 भगवतीचरण वर्मा

भगवतीचरण वर्मा की कविताओं में मस्ती और प्रेम तथा यौवन का उल्लास है। "वे अनासक्त भोक्ता की भाषा में सुंदर के सौंदर्य की महिमा और अपनी मस्ती के गान गाते हैं। "मधुकण", "प्रेम–संगीत", "मानव" और "एक दिन" इनकी काव्य रचनाएँ हैं। मस्ती का गान करते हुए कहते हैं–

"हम दीवानों की क्या हस्ती
है आज यहाँ कल वहाँ चले
मस्ती का आलम साथ चला
हम धूल उड़ाते जहाँ चले।"

इनके अलावा रामेश्वर शुक्ल "अंचल", गोपाल सिंह "नेपाली", आरसी प्रसाद सिंह, सियारामशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी, उदयशंकर भट्ट आदि इस धारा के अन्य प्रमुख कवि हैं।

16.9 सारांश

इस इकाई में आपने उत्तर छायावादी कविता का अध्ययन किया। उत्तर–छायावादी कविता का सर्वाधिक प्रभाव काव्यभाषा के क्षेत्र में है। भाषा की सफाई, संप्रेषणीयता इस कविता की उपलब्धियाँ हैं। काव्य भाषा को वस्तु जगत और यथार्थ से इस कविता ने सहज ही जोड़ा है।

आपने यह भी देखा कि राष्ट्रीयता और प्रेम या वैयक्तिक भावनाओं के क्षेत्र में जिस विद्रोह भावना या स्वछंदता के पथ पर यह कविता चली उसने इसे अत्यंत जन–प्रिय बनाया। दिनकर, नवीन, बच्चन की कविताएँ कई पीढ़ियों तक युवकों के कंठ पर चढ़ी रहीं। इन कविताओं का प्रवाह युवा–मन को प्रभावित करने में अभी समर्थ है। प्रेम का उद्दाम आवेग और उसकी सहज–अकुंठ अभिव्यक्ति या उसकी असफलता की व्यथा जिस सरलता से अभिव्यक्त हुई है, वह आरंभिक तौर पर अत्यंत आकर्षक है।

स्वच्छंदतावाद की इस प्रवृत्ति ने छायावादी आस्था का आवरण ओढ़े रखा जिसके कारण यह रोमैंटिक कविता पश्चिम की तरह किसी "अपराध–बोध" की प्रेरक नहीं बन पाई। "जहाँ पश्चिम की रोमैंटिक कविता अपराध–बोध से ग्रस्त हो गई वहीं भारतीय रोमैंटिक कविता ने "त्रास" की जगह "पावनता" की थाती ही समर्पित की" (साही)। उत्तर–छायावादी कवि स्थापित नीति–मर्यादाओं की उपेक्षा करते हुए भी किसी अनैतिकता का उद्घोष नहीं करते बल्कि दिनकर जैसे कवियों में तो नैतिकता का अंकुश भी मिलता है। छायावादी सांस्कृतिक प्रतीकों और आदर्शों को मानते हुए भी उत्तर–छायावादी कविता उस "आंतरिक लय" को पकड़ने का प्रयास करती है, जिससे ये प्रतीक व आदर्श जन्मते हैं। इसके कारण कविता के रूप में जो बदलाव आता है उसे विजयदेवनारायण साही ने इस प्रकार व्यक्त किया है – "छायावादी कलाकृति मूलतः एक विस्फोट करता हुआ काव्य रूप है – जैसे केंद्रीय अर्थ फूटकर चारों ओर क्रमशः विलीन होता हुआ बिखर रहा हो। तीसरे दशक की कलाकृति उसे विस्फोट की तरह नहीं, बल्कि एक लहर की तरह निर्मित करती है – जिस प्रयास में महादेवी से लेकर बच्चन तक के गीत निर्मित होते हैं।"

इस प्रकार उत्तर–छायावादी कविता आगामी नयी कविता के लिए भाषा और भाव–भूमि दोनों ही स्तरों पर जमीन तैयार करती है। यही इसका ऐतिहासिक दाय भी है।

इकाई 17 : प्रगतिशील साहित्य

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप आधुनिक हिंदी साहित्य की एक प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्ति प्रगतिशील साहित्य का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप प्रगतिशील साहित्य के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य का विवेचन कर सकेंगे। आप प्रगतिशील आंदोलन के उभार के कारणों को जान सकेंगें और साहित्य पर उसके प्रभाव की समीक्षा कर सकेंगे। हिंदी साहित्य के संदर्भ में आप प्रगतिशील साहित्य के उदय की जानकारी प्राप्त करेंगे। वैसे तो प्रगतिशील आंदोलन ने साहित्य की सभी विधाओं को प्रभावित किया है लेकिन इस इकाई में हम मुख्यतः प्रगतिशील कविता की परंपरा का ही उल्लेख करेंगे। यह भी आप इकाई पढ़कर समझ सकेंगे कि प्रगतिशील कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ कौन सी हैं और उनकी क्या विशेषताएँ हैं। इस तरह यह इकाई आपको प्रगतिशील साहित्य के विभिन्न पहलुओं की जानकारी देगी और उनको समझने और जाँचने की दृष्टि से भी परिचित कराएगी।

17.1 प्रस्तावना

आप एम.ए. हिंदी के पाठ्यक्रम–6 का अध्ययन कर रहे हैं। यह इस पाठ्यक्रम के खंड–5 से संबंधित इकाई है। इस खंड में आप आधुनिक साहित्य का परिचय प्राप्त कर रहे हैं। आपने पाठ्यक्रम की इकाई संख्या 16 में उत्तर–छायावादी काव्य का परिचय प्राप्त किया है। इस इकाई का संबंध प्रगतिशील साहित्य से है। जब हम आधुनिक साहित्य के संसार में प्रवेश करते हैं तो हमें इससे पूर्व के साहित्य से भिन्न तरह का साहित्य पढ़ने को मिलता है। हिंदी साहित्य में इससे पहले तक वीर, भक्ति और श्रृंगार से संबंधित कविताएँ लिखी जाती थीं। लेकिन आधुनिक युग में हमें इन विषयों से भिन्न विषयों पर कविताएँ पढ़ने को मिलती हैं। यह भिन्नता लगातार बढ़ती जाती है। अब मनुष्य के सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और वैयक्तिक अनुभवों पर भी कविताएँ लिखी जाने लगीं। यही नहीं उसके अनुभव संसार में आने वाली हर वस्तु, भाव और विचार कविता के विषय होने लगे। यह साहित्य की दुनिया में एक बड़ा बदलाव था। इस बदलाव को आपने पहले की इकाइयों में समझा होगा। यह बदलाव की प्रक्रिया निरंतर चलती रही है। भारतेंदु युग में जिस तरह की कविताएँ लिखी जाती रही हैं ठीक वैसी ही कविताएँ द्विवेदी युग में नहीं लिखी गईं। भिन्नता को हम छायावाद और छायावादोत्तर कविता में भी देख सकते हैं। हम इन बदलावों के बारे में यहाँ चर्चा नहीं करेंगे क्योंकि आप उनको पढ़ चुके हैं। हमारे कहने का तात्पर्य यही है कि प्रगतिशील साहित्य परिवर्तन की इस प्रक्रिया का स्वाभाविक परिणाम है। यह परिवर्तन क्यों हुआ इसके ऐतिहासिक कारण क्या थे और ये परिवर्तन किस तरह के हैं, इस पर भी हम इस इकाई में चर्चा करेंगे।

आधुनिक साहित्य में दूसरा बड़ा बदलाव भाषा और शिल्प के स्तर पर हुआ। भाषा के स्तर पर दो बातें हुईं। एक तो कविता के साथ–साथ गद्य में भी रचनाएँ होने लगीं और लेखकों ने ब्रज को त्याग कर खड़ी बोली हिंदी को अपनाना शुरू किया। पहले गद्य की भाषा खड़ी बोली हुई और बाद में कविता भी खड़ी बोली हिंदी में लिखी जाने लगी। साहित्य में कई नई विधाओं में लेखन बढ़ा जिनमें निबंध, कहानी, नाटक, उपन्यास और आलोचना के अलावा भी कई अन्य गद्य विधाएँ शामिल हैं। लेकिन एक बात इस संदर्भ में गौर करने लायक है। भारतेंदु और द्विवेदी युग तक के साहित्य की दुनिया में होने वाले परिवर्तनों को हम कविता और गद्य में एक–सा पाते हैं। लेकिन छायावाद और उत्तर छायावादी कविता में हम ऐसा नहीं पाते। जिस समय छायावाद के कवि जिस तरह की कविता कर रहे थे उस समय लिखा जाने वाला गद्य छायावादी गद्य साहित्य के रूप में नहीं पहचाना गया। इसी तरह उत्तर छायावादी कविता की तरह कोई उत्तर छायावादी गद्य साहित्य नहीं जन्मा। इसका कारण क्या है, यह साहित्य के इतिहासकारों के विचार का मुद्दा हो सकता है। हम यहाँ फिलहाल इस पर विचार नहीं करेंगे। हम सिर्फ यह कहना चाहते हैं कि छायावाद के दौर में गद्य और पद्य में जो भेद उत्पन्न हो गया था वह प्रगतिशील आंदोलन के समय एक बार फिर मिट गया। साहित्य का प्रगतिशील आंदोलन सिर्फ कविता का आंदोलन नहीं था बल्कि उसकी अभिव्यक्ति साहित्य की सभी विधाओं में हो रही थी। यही नहीं, यह ऐसा आंदोलन भी था जो साहित्य से इतर कलाओं मसलन, थियेटर, चित्रकला, संगीत फिल्म आदि में भी अभिव्यक्त हो रहा था। इसके साथ ही यह सिर्फ हिंदी तक सीमित नहीं था बल्कि यह भारत की लगभग सभी प्रमुख भाषाओं के साहित्य में एक साथ प्रकाशित हो रहा था। प्रगतिशील साहित्य पर विचार करते हुए हमें इस बात को ध्यान में रखना होगा।

प्रगतिशील साहित्य का संबंध हमारे राष्ट्रीय आंदोलन से बहुत गहरा है। आजादी का आंदोलन आधुनिक साहित्य की अब तक की सभी प्रमुख प्रवृत्तियों को प्रेरित और प्रभावित करता रहा है लेकिन प्रगतिशील आंदोलन ऐसा आंदोलन भी है जिसे हम विश्वव्यापी कह सकते हैं। यूरोप में फासीवाद के उभार के विरुद्ध संघर्ष के दौरान इस आंदोलन का जन्म हुआ था, और भारत जैसे औपनिवेशिक देशों के लेखकों और कलाकारों ने इसे राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन से जोड़ दिया। इस आंदोलन के पीछे मार्क्सवादी विचारधारा की शक्ति और सोवियत संघ के निर्माण की ताकत भी लगी हुई थी। इसने साहित्य के उद्देश्य से लेकर वस्तु और रूप तक के सवालों पर नये तरह की सोच को सामने रखा जो उस समय लेखकों और कलाकारों के बीच जीवंत बहस के मुद्दे बने। इस इकाई में हम इन सभी पहलुओं के बारे में विचार करेंगे। जाहिर है कि हमारा मकसद हिंदी साहित्य के संदर्भ में प्रगतिशील साहित्य, विशेष रूप से प्रगतिशील कविता का परिचय प्राप्त करना है इसलिए मुख्य रूप से हम अपनी बातचीत को इसी पर केंद्रित रखेंगे।

17.2 प्रगतिशीलता का सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य

प्रगतिशील साहित्य पर विचार करते हुए इस समस्या का सबसे पहले सामना करना पड़ता है कि क्या प्रगतिशील और प्रगतिवाद में अंतर है? अंग्रेजी में जिसे प्रोग्रेसिव लिटरेचर कहते हैं और उर्दू में तरक्की पसंद अदब उसे ही हिंदी में प्रगतिशील साहित्य नाम दिया गया है। हिंदी में प्रगतिशील के साथ–साथ प्रगतिवाद शब्द का भी प्रयोग होता रहा है। इस संदर्भ में भ्रम प्रगतिशील लेखकों और गैर प्रगतिशील लेखकों दोनों ने फैलाया है। गैर प्रगतिशील लेखकों ने उस साहित्य को जो मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के अनुसार लिखा गया है प्रगतिवाद नाम दिया। कुछ ने कम्युनिस्ट पार्टी के दिशा निर्देश के अनुसार लिखे गये साहित्य को प्रगतिवाद कहा, तो कुछ ने प्रगतिशील लेखक संघ के निर्देश के अनुसार लिखे गये साहित्य को प्रगतिवाद नाम दिया। प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन में प्रेमचंद ने कहा था कि साहित्यकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है इसलिए यह भी कहा गया कि लेखक को किसी संकीर्ण विचारधारा में बँधने की बजाए एक व्यापक मानवतावादी नजरिया अपनाना चाहिए। प्रगतिशील साहित्य को प्रगतिवाद के विपरीत ऐसा साहित्य कहा गया जिसमें छायावाद के बाद की सामाजिक–राजनीतिक स्थितियों को आधार बनाया गया हो और जो मार्क्सवादी या प्रगतिशील लेखक संघ से बँधा न हो। इस संदर्भ में डॉ. नामवर सिंह की टिप्पणी गौरतलब है। उन्होंने 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ', नामक अपनी पुस्तक के 'प्रगतिवाद' नामक अध्याय में लिखा था कि "......जिस तरह छायावाद और छायावादी कविता भिन्न नहीं है, उसी तरह प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य भी भिन्न नहीं है। 'वाद' की अपेक्षा 'शील' को अधिक अच्छा समझकर इन दोनों में भेद करना कोरा बुद्धि–विलास है और कुछ लोगों की इस मान्यता के पीछे प्रगतिशील साहित्य का प्रच्छन्न विरोध–भाव छिपा है।"

17.2.1 प्रगतिवादी विचारधारा

प्रगतिवादी साहित्य कहा जाए या प्रगतिशील साहित्य बुनियादी तौर पर उनमें कोई भेद नहीं है। यह सही है कि प्रगतिशील लेखकों ने अपनी विचारधारात्मक प्रेरणा मार्क्सवाद से ग्रहण की लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रगतिशील साहित्य मार्क्सवाद का अनुवाद भर है। इसी तरह यह सही है कि सन् 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के बाद हिंदी, उर्दू के ही नहीं बल्कि दूसरी भाषाओं के भी अधिकांश लेखक इसके साथ जुड़े लेकिन इसी कारण यह समझना कि वे सभी एक ही तरह का साहित्य लिख रहे थे और लेखन के लिए वे इस संगठन से निर्देश प्राप्त करते थे अनैतिहासिक तथ्य है। वस्तुतः लेखक प्रगतिशील लेखक संघ के झंडे तले इसलिए इकट्ठे हो रहे थे क्योंकि उन्हें यह महसूस हो रहा था कि देश को औपनिवेशिक दासता से मुक्त कराने के लिए और दुनिया को फासीवाद के खतरे से बचाने के लिए उन्हें भी उसी तरह संगठित होना चाहिए जिस तरह मजदूर, किसान और विद्यार्थी एकत्र हो रहे थे। साहित्य और संस्कृति की स्वायत्तता और स्वतंत्रता पर फासीवाद और उपनिवेशवाद दोनों प्रहार कर रहे थे। उस समय साहित्य में यह सवाल अहम् सवाल हो गया था कि 'तय करो कि तुम किस ओर हो'। यह सवाल इस तरह भी पूछा जा रहा था कि 'साहित्य किसलिए'। यह नहीं भूलना चाहिए कि यह दौर ही ऐसा था कि कोई भी लेखक तटस्थ होकर अपना लेखन नहीं कर सकता था। अज्ञेय जैसे लेखक जो कभी प्रगतिशील लेखक संघ के सदस्य नहीं रहे और जिन्होंने कभी मार्क्सवाद को विचारधारा के रूप में अंगीकार नहीं किया वे भी आजादी के संघर्ष में क्रांतिकारी के रूप में शामिल हुए थे और जेल की सजा भुगती थी। यही नहीं उन्होंने फासीवाद के खिलाफ संघर्ष में कम्युनिस्टों के साथ मिलकर काम किया था। कहने का तात्पर्य सिर्फ इतना है कि जिस समय प्रगतिशील साहित्य आंदोलन का उदय हुआ था और जब वह अपने उत्कर्ष की तरफ बढ़ रहा था, तब देश और शेष विश्व की स्थितियाँ इसके अनुकूल थीं।

अब प्रश्न उठता है कि प्रगतिशील या प्रगतिवाद क्या है। प्रगतिवाद मार्क्सवाद का पर्याय नहीं है न ही यह समाजवाद और साम्यवाद का पर्याय है। मार्क्सवाद और समाजवाद की बजाए लेखकों ने प्रगतिवाद शब्द चुना तो केवल इसलिए कि वे साहित्य और कला के क्षेत्र में उन सभी लेखकों और कलाकारों को एक साथ लाना चाहते थे जो मानव प्रगति और भाईचारे में विश्वास करते थे और जो यह मानते थे साहित्य का मकसद लोगों को हर तरह के शोषण और उत्पीड़न से मुक्त कराकर एक समतावादी समाज की स्थापना करने के लिए प्रेरित करना है। इस विचार की एक सीमा यदि नवजागरण दौर के ज्ञानोदय की अवधारणा थी तो दूसरी सीमा मार्क्सवाद। यूरोप में ज्ञानोदय ने जिस आधुनिक प्रगतिशील

मानव–प्रेरित विचारों को सामने रखा था मार्क्सवाद ने उसे ही एक वैज्ञानिक और क्रांतिकारी रूप प्रदान किया। इसलिए यह स्वाभाविक है कि प्रगतिशील साहित्य पर विचार करते हुए उसके सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य के रूप में मार्क्सवाद पर विचार किया जाता।

कार्ल मार्क्स ने लिखा है कि अब तक दार्शनिकों ने दुनिया की तरह–तरह से व्याख्या की है जब कि जरूरत उसे बदलने की है। यही कारण है कि मार्क्सवादी, सामाजिक परिवर्तनों की जानकारी देने के साथ ही सामाजिक रूपांतरण के लिए जरूरी तत्वों और प्रक्रियाओं की भी जानकारी देता है। मार्क्सवाद सिर्फ इतिहास और वर्तमान की व्याख्या ही नहीं करता बल्कि वह भविष्य के लिए सुस्पष्ट संकल्पना भी प्रस्तुत करता है जिसे मानव सामूहिक प्रयत्नों द्वारा संभव बना सकता है। 1917 में हुई बोल्शेविक क्रांति ने इसी सत्य को प्रमाणित किया था।

मार्क्सवादी दर्शन का आधार द्वंद्वात्मक भौतिकवाद और ऐतिहासिक भौतिकवाद है। इसके अनुसार सामाजिक विकास का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है। समाज जब से वर्गों में विभाजित हुआ है तब से यह संघर्ष चल रहा है। समाज के ये दो वर्ग शोषक और शोषित वर्ग हैं। शोषक वर्ग हमेशा संख्या में कम होता है लेकिन उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण होने के कारण वह राजसत्ता पर भी नियंत्रण रखता है। वह शोषित वर्ग के श्रम का शोषण करता है। इससे इन दोनों वर्गों के बीच संघर्ष की स्थितियाँ पैदा होती हैं। यही वर्ग संघर्ष है। मनुष्य का ज्ञात इतिहास, वर्ग संघर्षों का इतिहास है। मार्क्स का यह भी मानना है कि जिस वर्ग का समाज की राजसत्ता पर नियंत्रण होता है वह उस पर वैचारिक नियंत्रण भी रखता है।

वर्ग संघर्ष के कारण सामाजिक संरचनाओं में बदलाव आता है। इसी बदलाव के कारण मानव इतिहास दास युग से सामंतवाद और सामंतवाद से पूँजीवाद के दौर में पहुँचा है लेकिन इन सभी युगों में शोषक और शोषित वर्ग बने रहते हैं। यदि सामंतवाद में दास का स्थान किसान ले लेता है तो पूँजीवाद में मजदूर। इसी तरह दास–मालिकों से सामंतों और सामंतों से पूँजीपति वर्ग तक सत्ता का हस्तांतरण होता है। वर्ग समाज में शोषित समाज का शोषण समाप्त नहीं होता लेकिन उसे पहले से अधिक अधिकार मिलते हैं और उनकी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थिति में सकारात्मक बदलाव आते हैं। मार्क्स और एंगेल्स का मानना था कि शोषित वर्ग को शोषण से मुक्ति तभी मिलेगी जब वह पूँजीपति वर्ग को हटाकर खुद सत्ता पर नियंत्रण करेगा। मार्क्स ने कहा था कि शोषक वर्ग को सत्ता पर दोबारा न आने देने के लिए सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व स्थापित करना होता है। इसे वह समाजवाद की अवस्था कहते हैं और इसे वे संक्रमण की अवस्था ही मानते हैं। वे साम्यवाद की स्थिति उसे मानते हैं जब सभी तरह के वर्ग समाप्त हो जाएँगे और एक वर्गहीन और राज्यहीन समाज बनेगा जहाँ कोई किसी का शोषण और उत्पीड़न नहीं करेगा।

17.2.2 प्रगतिवादी साहित्य चिंतन

मार्क्सवाद सिर्फ सामाजिक रूपांतरण का दर्शन ही नहीं है उसने साहित्य और कला के चिंतन को भी गहरे रूप से प्रभावित किया है। मार्क्स और एंगेल्स को इतना अवसर नहीं मिला था कि वे साहित्य और कला पर लिखते लेकिन समय–समय पर उन्होंने जो टिप्पणियाँ या पत्र लिखे उससे मार्क्सवादी साहित्य चिंतन की आधारशिला निर्मित करने में मदद मिली। बाद में इसी के आधार पर लेनिन, माओ, के साथ साथ जार्ज लुकाच, ग्राम्सी, प्लेखानोव, ब्रेख्त, गोर्की आदि ने साहित्य और कला संबंधी विचार भी प्रस्तुत किये। साहित्य संबंधी इस चिंतन परंपरा का विवरण यहाँ देना न तो संभव है और न आवश्यक। लेकिन हम यहाँ इस सबंध में हिंदी के उन लेखकों के साहित्य संबंधी विचारों का परिचय प्राप्त करेंगे जिन्होंने प्रगतिशील साहित्य को प्रभावित किया है।

प्रेमचंद ने 1936 में लखनऊ में प्रगतिशील लेखक संघ के अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए कहा था कि "साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है" बल्कि उनके अनुसार "हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो–जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।" प्रेमचंद ने इसी

व्याख्यान में यह कहा था कि साहित्यकार और कलाकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है। लेकिन ऊपर के उद्धरण से यह स्पष्ट है कि वे सभी तरह के साहित्य का समर्थन नहीं करते। वे सिर्फ उस साहित्य को श्रेयस्कर मानते हैं जो हमें सुलाए नहीं बल्कि जगाए। इसी बात को आगे बढ़ाते हुए रामविलास शर्मा ने कहा है कि प्रगतिशील साहित्य वह है जो समाज को आगे बढ़ाता है मनुष्य के विकास में सहायक होता है इसका अर्थ यह भी नहीं है कि प्रगतिशील होने से ही साहित्य श्रेष्ठ हो जाता है। वे साहित्य और कला के अंतःसंबंधों पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि "हमें ऐसा साहित्य चाहिए जो एक तरफ तो कला की उपेक्षा न करे; रस–सिद्धांत के नियामक जिस आनंद की मांग करते हैं, वह साहित्य से मिलना चाहिए, भले ही उसका एकमात्र उद्‌गम रसराज न हो, भले ही उसकी परिणति आत्मा की चिन्मयता और अखंडता में न हो। कलात्मक सौष्ठव के साथ–साथ उस साहित्य में व्यक्ति और समाज के विकास और प्रगति में सहायक होने की क्षमता भी होनी चाहिए। तभी वह अभिनन्दनीय हो सकता है।" यह साहित्य में यथार्थवाद की स्थापना की अभिव्यक्ति थी।

मार्क्सवाद के अनुसार साहित्य और समाज के अंतःसंबंधों को समझने के लिए आधार और अधिरचना के संबंधों को समझना होगा। मार्क्स का प्रसिद्ध कथन है कि मनुष्य का सामाजिक अस्तित्व ही उसकी चेतना को निर्धारित करता है। इस बात को व्याख्यायित करते हुए मार्क्स ने 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की आलोचना में योगदान' नामक पुस्तक की भूमिका में लिखा था, "अपने जीवन के सामाजिक उत्पादन में मनुष्य ऐसे निश्चित संबंधों में बँधते हैं, जो अपरिहार्य एवं उनकी इच्छा से स्वतंत्र होते हैं। उत्पादन के ये संबंध उत्पादन की भौतिक शक्तियों के विकास की एक निश्चित मंजिल के अनुरूप होते हैं। इन उत्पादन संबंधों का पूर्ण योग ही समाज का आर्थिक ढाँचा है—वह असली बुनियाद है, जिस पर कानून और राजनीति का ऊपरी ढाँचा खड़ा होता है और जिसके अनुकूल ही सामाजिक चेतना के निश्चित रूप खड़े होते हैं। भौतिक जीवन की उत्पादन प्रणाली जीवन की आम सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक प्रक्रिया को निर्धारित करती है। मनुष्यों की चेतना उनके अस्तित्व को निर्धारित नहीं करती बल्कि उनका सामाजिक अस्तित्व उनकी चेतना को निर्धारित करता है।" साहित्य की रचना को भी इसी विचार संदर्भ में समझा जा सकता है। समाज में चलने वाली प्रक्रियाओं को साहित्य, दर्पण की तरह प्रतिबिंबित नहीं करता। साहित्य में समाज का यथार्थवादी चित्रण होना चाहिए, यह बात जब प्रगतिशील साहित्यकार कहता है तब इसका अर्थ यह नहीं है कि समाज जैसा है उसे वह उसी रूप में चित्रित कर दे। इसका मतलब यह है कि साहित्य में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति होनी चाहिए। चूंकि समाज का रूप अत्यंत जटिल होता है इसलिए साहित्य में भी समाज की जटिलता की अभिव्यक्ति होगी। साहित्यकार को इस जटिलता को समझना होगा। इसी समझने की प्रक्रिया में मार्क्सवादी दृष्टिकोण सहायक बनता है। यह मान लिया जाता है कि साहित्य में मार्क्सवाद को लागू करने का मतलब है साहित्य को राजनीति का पिछलग्गू बनाना। इस संदर्भ में मुक्तिबोध का मानना है कि आज किसी भी तरह के साहित्य के लिए यह संभव ही नहीं है कि वह राजनीति से निरपेक्ष हो। यहाँ तक कि जो कलावादी होने का दावा करते हैं वे भी राजनीति से निरपेक्ष नहीं होते। उन्हीं के शब्दों में, "यह ध्यान में रखने की बात है कि एक कला–सिद्धांत के पीछे एक विशेष जीवन–दृष्टि होती है, उस जीवन–दृष्टि के पीछे एक जीवन–दर्शन होता है और उस जीवन–दर्शन के पीछे, आजकल के जमाने में एक राजनीतिक दृष्टि भी लगी रहती है।" मार्क्स के ऊपर उद्धृत कथन से जाहिर है कि साहित्य व्यक्ति की अंतःप्रेरणा का परिणाम ही नहीं होता वह परस्पर विरोधी सामाजिक और सांस्कृतिक शक्तियों के संघर्ष का भी परिणाम होता है। वह राजनीतिक और विचारधारात्मक प्रेरणाओं से स्वतंत्र और निरपेक्ष नहीं रह सकता। यहाँ फिर से मुक्तिबोध का कथन उद्धृत करना प्रासंगिक होगा। उनके अनुसार, "यह कहना बिल्कुल गलत है कि राजनीतिक प्रेरणा कलात्मक प्रेरणा अथवा विशुद्ध दार्शनिक अनुभूति कलात्मक अनुभूति नहीं है; बशर्ते कि वह सच्ची वास्तविक अनुभूति हो, छद्‌म जात न हो!" साहित्यकार राजनीति और विचारधारा के पास इसलिए नहीं जाता कि वह राजनीति और विचारधारा के क्षेत्र में किसी तरह का परिवर्तन करना चाहता है। मुक्तिबोध के अनुसार उसका मकसद तो मानव जीवन को बेहतर और उसे शोषण–उत्पीड़न से मुक्त करना है।

साहित्य सिद्धांत के संदर्भ में वस्तु और रूप के अंतःसंबंधों का सवाल भी अहम सवाल है। आमतौर पर यह समझ लिया जाता है कि प्रगतिशील साहित्यकार रूप और शिल्प को महत्त्व नहीं देता वह सिर्फ साहित्य की विषय वस्तु को ही महत्त्व देता है। उसका यह मानना होता है कि यदि विषय वस्तु प्रगतिशील है, यदि उसमें किसानों और मजदूरों के जीवन का यथार्थवादी चित्रण है तो वह साहित्य महान है भले ही वह कला और शिल्प की दृष्टि से कमजोर ही क्यों न हो। लेकिन यह धारणा सही नहीं है। वस्तु और रूप में

संबंधों पर प्रकाश डालते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है, "रूप और विषय–वस्तु का संबंध अभिन्न और अन्योन्याश्रित है। प्रगतिशील साहित्य रूप–सौष्ठव का तिरस्कार करके दो कदम आगे नहीं चल सकता। यह सौष्ठव कला को प्रभावशाली बनाने में एक बड़ा कारण है। काव्य कौशल की ओर ध्यान न देकर रचनाकार अपनी कृति को असमर्थ ही बनाएगा। परंतु कला का रूप हवा में नहीं निखरता। फूल के रूप–रंग के लिए जिस तरह धरती की आवश्यकता होती है, उसी तरह किसी भी कृति के कलात्मक सौंदर्य का निखार उसकी विषय–वस्तु की सामाजिकता से जुड़ा हुआ है।"

प्रगतिशील साहित्य नारेबाजी का साहित्य नहीं होता। प्रगतिशील साहित्य जनता का साहित्य होता है। वह जन आकांक्षाओं को वाणी देता है। वह उनके जीवन यथार्थ को ही अभिव्यक्त नहीं करता बल्कि उसके रूपांतरण की इच्छा से भी प्रेरित होता है। वह जनता की धर्मनिरपेक्ष और जनवादी भावनाओं के अनुरूप लिखा होता है। वह उन विचारों और संगठनों का विरोध करता है जो जनता को शोषित और उत्पीड़ित जीवन जीने को मजबूर करते हैं। वह जनता की भावनाओं को उदार और मानवीय, उनके सौंदर्यबोध को व्यापक और उन्नत बनाता है। वह कला के प्रति लोगों की अभिरुचियों को स्वस्थ और समाजोन्मुखी बनाता है। प्रगतिशील साहित्य को इसी व्यापक मानवीय और कला संदर्भ में ही देखा जाना चाहिए।

17.3 प्रगतिवादी आंदोलन की पृष्ठभूमि

प्रगतिशील साहित्य के उदय और विकास के कारणों को समझने के लिए हमें उन ऐतिहासिक परिस्थितियों को समझना होगा जिसने प्रगतिवादी सांस्कृतिक आंदोलन को जन्म दिया। जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं कि प्रगतिवादी आंदोलन सिर्फ राष्ट्रीय आंदोलन नहीं था बल्कि अंतर्राष्ट्रीय आंदोलन भी था। यह सन् 1930 के बाद की परिस्थितियों का परिणाम था। इन परिस्थितियों को समझे बिना हम प्रगतिवादी आंदोलन की पृष्ठभूमि को नहीं समझ सकते। सबसे पहले हमें उस समय की अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों को समझना होगा।

17.3.1 अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ

सन् 1917 में रूस में कामयाब बोल्शेविक क्रांति ने विश्व में एक नये युग का सूत्रपात किया। यह क्रांति जहाँ एक ओर दुनिया के समाजवादी चरण में प्रवेश की घोषणा थी, वहीं दूसरी ओर इसने पूँजीवाद के पतन की घोषणा भी की। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद से पूँजीवादी देशों की अर्थव्यवस्थाएँ भयंकर संकट के दौर से गुजर रही थीं। प्रसिद्ध समाजशास्त्री ए.आर. देसाई के अनुसार, इस संकट ने साम्राज्यवादियों के बीच, साम्राज्यवादी राज्यों और पराधीन देशों के बीच, किसानों और जमींदारों के बीच, संक्षेप में पूँजीवाद में निहित सारे अंतर्विरोधों को बढ़ा दिया। इन बढ़ते अंतर्विरोधों के परिणामस्वरूप जहाँ एक ओर विभिन्न पूँजीवादी–साम्राज्यवादी देशों में विश्व पूँजीवादी अर्थनीतिक व्यवस्था पर अपना एकाधिकार कायम करने या बढ़ाने के लिए संघर्ष तीव्र हुआ। वहीं दूसरी ओर, औपनिवेशिक राष्ट्रों में राष्ट्रीय स्वाधीनता तथा जनता का जनवादी संघर्ष भी बढ़ने लगा। पहले वाले संघर्ष ने साम्राज्यवादी देशों को दो शिविरों में बाँट दिया। एक ओर इटली, जर्मनी, जापान की फासिस्ट ताकतें थी तो दूसरी ओर ब्रिटेन, फ्रांस और अमरीका की साम्राज्यवादी ताकतें। इन दोनों के संघर्ष ने ही दूसरे महायुद्ध का सूत्रपात किया।

फासीवाद का उदय विश्व महानता के लिए खतरा था। पहले इटली में मुसोलिनी और बाद में जर्मनी में हिटलर द्वारा सत्ता पर कब्जा होने के कारण दुनिया में युद्ध का भयंकर खतरा मंडराने लगा था। पहले इटली और बाद में जर्मनी ने अपने पड़ोसी देशों पर हमले किए और उन पर अधिकार कर लिया। हिटलर ने अपने ही देश के अल्पसंख्यक यहूदियों पर बेतहाशा जुल्म ढाए और उनके सारे मानवाधिकार छीन लिये। यूरोप में फासीवाद के बढ़ते खतरे के कारण फासीवाद विरोधी जन आंदोलनों में बढ़ोतरी हुई। दुनिया भर के लेखकों ने फासीवाद के खिलाफ संगठित होने और उसका विरोध करने का आह्वान किया। 1939 में ब्रिटेन ने जर्मनी के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी। फिर एक–एक कर पूरा यूरोप युद्ध की चपेट में आ गया। ब्रिटेन ने युद्ध की घोषणा के साथ बिना भारतीय नेताओं से सलाह–मशविरा किए हुए भारत के भी उसमें शामिल होने की घोषणा कर डाली। 1941 में हिटलर ने सोवियत संघ पर भी हमला बोल दिया। इससे पहले तक युद्ध साम्राज्यवाद और फासीवाद के बीच था। लेकिन सोवियत

संघ पर हमले के बाद यह फासीवाद और जनवाद के बीच युद्ध में बदल गया था। जापान द्वारा अमरीकी बंदरगाह पर्ल हार्बर पर हमले के बाद यह युद्ध दुनिया के एक छोर से दूसरे छोर तक फैल गया था। लगभग छह साल तक जबर्दस्त संघर्ष के बाद फासीवादी शक्तियों की पराजय हुई। सोवियत संघ की सेना ने अदम्य साहस का परिचय देते हुए जर्मनी को न सिर्फ अपने देश से बाहर खदेड़ दिया बल्कि उसे जर्मनी सहित पूर्वी यूरोप के देशों से भी बाहर कर दिया। 1945 में एक–एक कर फासीवाद देश पराजित होते गए। अमरीका ने जापान के दो शहरों हिरोशिमा और नागासाकी पर एटम बम का प्रयोग किया जिससे लाखों निर्दोष लोगों को जान से हाथ धोना पड़ा। लाखों लोग जीवन भर के लिए लाइलाज बीमारियों से ग्रस्त हो गये। पूर्वी यूरोप के देशों में वहाँ की कम्युनिस्ट पार्टियों के नेतृत्व में समाजवादी शासन की स्थापना हुई।

दूसरे विश्व युद्ध के दौरान और बाद की स्थितियों की समीक्षा करते हुए ए.आर. देसाई ने लिखा है, ''युद्ध के तथा युद्धोत्तर काल के वर्ष गतिशील घटनाओं से भरे हैं। इस काल के वर्षों के इतिहास में इतिहास के दशक समाहित हैं। अनेक देशों के समाजों के आर्थिक आधार, उनकी सामाजिक अधिरचना में जोरदार बदलाव आए और कुछ देशों में तो समाज का रूप ही बदल गया। मानव का सामाजिक संसार अनेक बढ़े हुए अंतर्विरोधों, तीव्रीकृत वर्ग विरोधों और परिणामतः राष्ट्रों, वर्गों और सामाजिक व्यवस्थाओं के बीच घनीभूत संघर्ष का रंगमंच बन गया है। आणविक बरबादी, यहाँ तक कि संपूर्ण विनाश कर देने वाले विश्व युद्ध का खतरा मानवता के सामने है। किंतु इसके साथ ही साथ ऐतिहासिक दृष्टि से प्रगतिशील सामाजिक शक्तियाँ भी विजयी ढंग से जीतते हुए और मानवता को एक आत्मघाती विपदा से सुरक्षा की गारंटी देते हुए आगे बढ़ रही हैं।''

दूसरे विश्व युद्ध के बाद समाजवाद और साम्राज्यवाद के बीच संघर्ष बढ़ता गया। साम्राज्यवादी ताकतें अमरीकी नेतृत्व में सोवियत संघ के खिलाफ युद्धोन्मादी प्रचार में जुट गई। इसने शीतयुद्ध का माहौल बना दिया। इसका असर भारत पर भी पड़ा जो 1947 में आजादी हासिल कर चुका था। इसने लेखकों और बुद्धिजीवियों की उस एकता पर भी असर डाला जो फासीवाद के विरुद्ध संघर्ष के दौरान निर्मित हुई थीं।

17.3.2 राष्ट्रीय परिस्थितियाँ

1857 के संघर्ष में पराजय के बाद अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीय जनता का संघर्ष दूसरे दौर में प्रवेश कर गया। अब इस संघर्ष का अगुआ वह मध्यवर्ग था जो तेजी से हो रहे परिवर्तनों के कारण उभर रहा था। 1885 में कांग्रेस की स्थापना ने उसे इस संघर्ष के लिए एक मंच प्रदान किया। हालांकि कांग्रेस ने अपने संघर्ष की शुरुआत भारतीयों के लिए अधिक अधिकारों की माँग से की थी, लेकिन यह संघर्ष बीसवीं सदी में तेज होने लगा और भारतीयों के लिए स्वायत्त अधिकार और फिर पूर्ण आजादी में बदल गया। गांधी और नेहरू के नेतृत्व में जो आंदोलन तेज हो रहा था उसमें धीरे–धीरे किसान और मजदूर भी शामिल हो रहे थे।

1930 के दशक में कांग्रेस के सुधारवादी नेतृत्व के ढुलमुलपने ने कांग्रेस के वामपंथियों को कांग्रेस सोशलिस्ट मंच की स्थापना को प्रेरित किया। इससे पहले 1925 में कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हो चुकी थी। बीसवीं सदी के आरंभ में ही मजदूर संगठन बन चुका था जिस पर चौथे दशक में वामपंथियों का असर बढ़ गया था। इस दशक में किसानों और विद्यार्थियों के संगठन बने और उनके अखिल भारतीय आंदोलन उभर कर सामने आए। कांग्रेस के नेतृत्व पर भी नेहरू और सुभाष जैसे वामपंथी विचार वाले नेताओं का वर्चस्व बढ़ने लगा था। इस तरह आजादी का आंदोलन एक नये तरह के दौर में प्रवेश कर गया था। इसका असर लेखकों और बुद्धिजीवियों पर भी पड़ना स्वाभाविक था। 1935 में कुछ भारतीय लेखकों और बुद्धिजीवियों ने लंदन में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की जिसका पहला अधिवेशन लखनऊ में 1936 में हुआ। प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के बारे में हम आगे के भाग में पढ़ेंगे।

यह वह दौर था जब भारत का स्वतंत्रता संग्राम जन संग्राम में बदल गया था और जिसमें मध्यवर्ग के साथ–साथ किसानों और मजदूरों की भागीदारी भी बढ़ रही थी। इसका परिणाम यह हुआ कि स्वतंत्रता संग्राम के साथ किसानों और मजदूरों की माँगें भी शामिल होने लगीं। कांग्रेस को इस बात पर विचार

करना पड़ा कि आजादी के बाद का भारत किस तरह का होगा। सत्ता जमींदारों और पूँजीपतियों के हाथ में होगी या किसानों और मजदूरों के हाथ में। क्या जमींदारी प्रथा इसी तरह कायम रहेगी या जमीन उनकी होगी जो उसे जोतता है। आजादी के इस दौर में महिलाओं और दलितों के अधिकारों का प्रश्न भी उपस्थित हुआ। आजादी के संघर्ष में महिलाओं की भागीदारी भी बढ़ रही थी। बाबा साहब अंबेडकर के नेतृत्व में दलित अपने अधिकारों की माँग भी सामने रख रहे थे इस तरह तीस का दशक भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का अंत्यत महत्वपूर्ण दौर था।

इसी दौर में कुछ नकारात्मक रुझान भी प्रकट हो रहे थे। मुस्लिम लीग मुसलमानों के लिए अधिक अधिकारों की माँग करते हुए पृथक देश की माँग की ओर बढ़ रही थी। हिंदू महासभा के बाद अब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ भी हिंदुओं को सांप्रदायिक आधार पर संगठित कर रहा था। नतीजतन देश में सांप्रदायिक दंगों की घटनाओं में बढ़ोतरी हो रही थी। इस सांप्रदायिक विभाजन के खिलाफ जनता को एकजुट रखने का भार भी वामपंथी दलों और गुटों पर था। लेकिन साम्राज्यवाद की साजिश और सांप्रदायिक संगठनों की हरकतों ने आखिरकार देश को विभाजन के कगार पर ला खड़ा किया। देश 1947 में आजाद तो हो गया लेकिन धर्म के आधार पर वह हिंदुस्तान और पाकिस्तान में बँट भी गया। लाखों लोग बेघरबार हो गये। हजारों लोग सांप्रदायिक दावानल में स्वाहा हो गये। आजादी के बाद नये हिन्दुस्तान बनाने के सवाल पर वामपंथी और कांग्रेस संगठन एक दूसरे के विरोध में खड़े हो गये। कांग्रेस ने जिस सत्ता की स्थापना की वह धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक थी लेकिन वह पूँजीपतियों और भूस्वामियों के हित में काम करने वाली सत्ता भी थी। सवाल यह उपस्थित हो गया था कि देश का निर्माण किस रास्ते पर चलकर हो, पूँजीवाद के रास्ते पर या समाजवाद के रास्ते पर। इस विभाजन ने बुद्धिजीवियों और लेखकों को भी विभाजित कर दिया।

17.4 प्रगतिवादी आंदोलन का इतिहास

अप्रैल 1936 में लखनऊ में कांग्रेस अधिवेशन के मौके पर प्रगतिशील लेखक संघ का स्थापना सम्मेलन आयोजित हुआ। इसी अवसर पर अखिल भारतीय किसान सभा का अधिवेशन भी आयोजित किया गया था। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। हम पहले चर्चा कर चुके हैं कि किन राजनीतिक स्थितियें ने वामपंथी राजनीति के उभार को संभव बनाया और किसान, मजदूर और विद्यार्थियों के संगठन अस्तित्व में आए। प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना से पहले से साहित्य में परिवर्तन के संकेत मिलने लगे थे। इन परिवर्तनों का संबंध किस तरह प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना से है, इसे समझने की जरूरत है।

17.4.1 लेखक संघ बनाने के आरंभिक प्रयास

प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की पृष्ठभूमि पर टिप्पणी करते हुए रेखा अवस्थी ने लिखा है, ''प्रगतिशील लेखक संघ'' की स्थापना के पहले के सृजनात्मक साहित्य को यदि ध्यान से देखें तो पता चलता है कि सन् 30 के आसपास किसान समस्या और स्वाधीनता का प्रश्न लगभग यथार्थ के संपूर्ण द्वंद्व के साथ अंकित करने की प्रवृत्ति बलवती हो जाती है। हिंदी के मध्यमवर्गीय लेखक सहसा किसानों के प्रति गहरा लगाव क्यों अनुभव करने लगे? किसानों के प्रति 'बौद्धिक सहानुभूति' अथवा 'क्रांतिकारी एकात्मकता' का यह भाव अचानक सुसंगत रूप में क्यों व्यक्त होने लगा? जैसे इन प्रवृत्तियों के मूल कारण तत्कालीन परिस्थितियों में निहित हैं, उसी तरह 'प्रगतिशील लेखक संघ' के गठन की भावना भी उन्हीं परिस्थितियों में पैदा हुई थी।'' सन् तीस के आसपास हिंदी के साहित्य पर नजर डालें तो हम पाते हैं कि उस समय के प्रमुख लेखक और कवियों के साहित्य में महत्त्वपूर्ण बदलाव आ रहे थे। निराला और पंत की कविता छायावादी रूमानियत को छोड़कर यथार्थवाद की ओर उन्मुख हो रही थी। स्वयं प्रसाद भी अपने कथा साहित्य में 'तितली' और 'कंकाल' जैसे उपन्यास लिख रहे थे। कहानियों में भी वे 'आकाश–दीप' और 'पुरस्कार' की बजाए 'गुंडा' और 'मधुआ' जैसे कहानियाँ लिख रहे थे। प्रेमचंद जो 'प्रेमाश्रम' की रचना से किसानों के जीवन को रचनात्मक अभिव्यक्ति दे रहे थे, अब अपने फलक को और व्यापक करते हुए 'निर्मला' और 'गबन' जैसे उपन्यास लिख रहे थे। बाद में वे किसान जीवन के महाकाव्य कहे जाने वाले उपन्यास 'गोदान' की रचना कर सके। इसलिए यह समझना भूल होगी कि 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के साथ अचानक हिंदी में किसान, मजदूर और स्त्रियों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करने वाला यथार्थवादी साहित्य लिखा जाने लगा था। वस्तुतः इससे पहले ही उसके लिए आधारभूमि तैयार होने लगी थी।

यह समझने की भी भूल की जाती है कि प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना और प्रगतिवाद की शुरुआत विदेशी प्रभाव से मुमकिन हुई है। यह सही है कि उस समय की परिस्थितियाँ इस तरह की थीं कि दुनिया भर के लेखक फासीवाद के खिलाफ एकजुट हो रहे थे। लेकिन यह सही नहीं है कि सिर्फ इसी वजह से भारत के लेखक भी एकजुट हुए। 1935 में पेरिस में लेखक फासीवाद के खिलाफ एकजुट हुए थे लेकिन भारत के लेखक भी लंबे समय से एकजुट होने और संगठन बनाने की जरूरत महसूस करने लगे थे। हिंदी में लेखकों का एक मंच लंबे समय से चला आ रहा था जिसे हिंदी साहित्य सम्मेलन के नाम से जाना जाता है। इस सम्मेलन पर ऐसे लोगों का वर्चस्व कायम था जो साहित्य में पुनरुत्थानवाद और सांप्रदायिक नजरिए के समर्थक थे और जो साहित्य को साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष का हथियार बनाने और जनवाद, धर्मनिरपेक्षता और रचनात्मक नवोन्मेष को अभिव्यक्त करने का माध्यम बनाने की मुखालफत करते थे। जवाहरलाल नेहरू तक हिंदी के इस दरबारी और दकियानूसी माहौल को दमघोंटू मानते थे और उसकी आलोचना कर चुके थे (प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य, पृ. 3–4)। 1934 में प्रेमचंद और रामचंद्र टंडन के बीच लेखक संघ बनाने को लेकर जो बहस चली वह इस बात का प्रमाण है कि उस समय के लेखक इस बात पर तो सहमत थे कि लेखक संघ बनना चाहिए लेकिन उसका स्वरूप और कार्यक्षेत्र क्या हो इस पर विवाद बना हुआ था। इस लेखक संघ को बनाने के लिए रामनरेश त्रिपाठी, किशोरीदास वाजपेयी और प्रेमचंद तीन संयोजक नियुक्त हुए थे। लेकिन रामचंद्र टंडन लेखक संघ के प्रकाशकों के विरुद्ध लेखकों के स्वत्व अधिकारों की रक्षा के लिए गठित करने पर बल दे रहे थे जबकि प्रेमचंद लेखक संघ को लेखकों की ट्रेड यूनियन से ज्यादा व्यापक अर्थ में देख रहे थे (रेखा अवस्थी,)। इस विवाद के कारण लेखक संघ की योजना बीच में ही रह गई। बाद में प्रेमचंद 'भारतीय साहित्य परिषद्' की स्थापना के काम से जुड़ गये। इसके लिए उन्होंने अपनी पत्रिका 'हंस' को भी सौंप दिया। अक्टूबर 1935 से 'हंस' 'भारतीय साहित्य परिषद्' के मुखपत्र के रूप में निकलने लगा। भारतीय साहित्य परिषद् सिर्फ हिंदी की परिषद् नहीं थी। बल्कि सभी भारतीय भाषाओं की परिषद् थी और इसे गांधीजी का आशीर्वाद प्राप्त था। इन सब तथ्यों से यह भी पता लगता है कि तीस के दशक में भारतीय लेखक न सिर्फ संगठित होने के बारे में सक्रिय थे बल्कि वे भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों को एक मंच पर लाने के लिए भी प्रयासरत थे। जाहिर है कि इस काम में प्रेमचंद सबसे आगे थे क्योंकि वे ही प्रगतिवाद के आंदोलन का रूप लेने के बहुत पहले से उसी तरह की सोच का साहित्य लिख रहे थे जो बाद में प्रगतिवाद की पहचान बना।

17.4.2. प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना

1933 में जर्मनी में हिटलर के सत्तासीन होने के बाद से दुनिया भर के लेखक और बुद्धिजीवी फासीवाद के खिलाफ एकजुट होने की जरूरत महसूस करने लगे थे। उस दौर में मैक्सिम गोर्की जैसे लेखकों ने यह सवाल उठाया था कि 'किस ओर हो तुम'। 1934 में सोवियत संघ में लेखक संघ की स्थापना हो चुकी थी। उसके बाद लेखकों को संगठित करने का ऐसा ही एक व्यापक प्रयत्न जुलाई 1935 में हेनरी बारबूज के नेतृत्व में पेरिस में हुआ। इस अवसर पर 'संस्कृति की रक्षा के लिए विश्व लेखक सम्मेलन' बुलाया गया। 'इस अधिवेशन ने फासिज्म के खिलाफ तथा उत्पीड़ित राष्ट्र के शोषित जनगण के समर्थन में एवं विचार स्वातंत्र्य की रक्षा के लिए लेखकों की आवाज 'बुलंद की' (रेखा अवस्थी,)। इसी अधिवेशन के अवसर पर ही प्रगतिशील लेखकों की एक स्थायी समिति बनाई गई जिसके अध्यक्ष अंग्रेजी के उपन्यासकार ई.एम.फोर्स्टर को बनाया गया। इस घटना से प्रेरित होकर 1935 में ही लंदन में पढ़ने और रहने वाले कुछ भारतीय लेखकों और बुद्धिजीवियों ने 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' बनाने का फैसला किया। मुल्कराज आनंद उसके अध्यक्ष चुने गये और सज्जाद जहीर इसके सचिव बनाए गये। इस बैठक में उन्होंने एक घोषणापत्र भी तैयार किया जिसे उन्होंने सभी प्रमुख भारतीय लेखकों को भेजा। प्रेमचंद जो पहले से ही लेखक संघ बनाने के लिए प्रयत्नरत थे, उन्होंने इसका स्वागत किया और जनवरी 1936 के 'हंस' में उन्होंने इस घोषणापत्र का सारांश प्रकाशित किया।

प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के प्रयासों से हिंदी और उर्दू के प्रगतिशील लेखक ही नहीं जुड़े थे बल्कि उन्हें रवींद्रनाथ टैगोर, जवाहरलाल नेहरू, आचार्य नरेंद्रदेव और जयप्रकाश नारायण आदि के सहयोग का आश्वासन प्राप्त हो गया था (कर्णसिंह चौहान,)। अप्रैल में जब लखनऊ में कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था तभी वहीं प्रगतिशील लेखक संघ का स्थापना सम्मेलन नौ और दस अप्रैल को हुआ। कांग्रेस अधिवेशन का सभापति जवाहरलाल नेहरू को बनाया गया और प्रगतिशील लेखक संघ का सभापति प्रेमचंद को। प्रेमचंद ने इस सम्मेलन में दिए अपने भाषण में "रूढ़िवाद, व्यक्तिवाद, संकीर्ण सौंदर्य–दृष्टि और

अलंकारवाद पर प्रहार करते हुए साहित्यकारों का आह्वान किया कि वे सक्रिय और जीवित साहित्य की रचना करें, भाषा को सहज बनाएँ और एक नये सामाजिक यथार्थवाद को अपनाएँ (कर्णसिंह चौहान)।''
इस अवसर पर जारी किए गए घोषणापत्र में प्रगतिशील लेखकों का आह्वान किया गया था कि वे प्रगतिशील लेखकों की संस्थाएँ संगठित करे और साहित्य छापकर अपने उद्देश्यों का प्रचार करें। प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियों के विरुद्ध संघर्ष करके देशवासियों के स्वाधीनता संग्राम को आगे बढ़ाएँ। प्रगतिशील लेखकों की सहायता करें और स्वतंत्रता और स्वतंत्र विचार की रक्षा करें (रेखा अवस्थी,)। प्रलेसं की स्थापना के बाद यदि बहुत से लेखकों ने इसका समर्थन किया तो दूसरे कई इसके विरोध में सक्रिय हुए। प्रगतिवाद का विरोध दो तरह के लोगों के द्वारा हुआ। एक वे जो रूढ़िवादी और सांप्रदायिक सोच के समर्थक थे, यद्यपि साहित्य की दुनिया पर उनका अधिक असर नहीं था लेकिन राजनीति और सांस्कृतिक जगत में वे काफी सक्रिय थे। दूसरा विरोध उन समाजवादियों ने किया जो प्रगतिवाद को विदेशी प्रभाव की उपज मानते थे और यह भी मानते थे कि यह कम्युनिज्म की ही एक शाखा है। इन सब के बावजूद प्रगतिवाद को उस समय के अधिकांश प्रतिष्ठित और नये दोनों तरह के लेखकों का सहयोग और समर्थन मिला और उसकी गतिविधियों का विस्तार होने लगा। प्रेमचंद तो स्थापना सम्मेलन के बाद अल्प समय तक ही जीवित रह सके। लेकिन हिंदी के ही नहीं दूसरी भाषाओं के बड़े साहित्यकार इससे जुड़े रहे। इस तरह प्रगतिशील आंदोलन का विस्तार होने लगा।

17.4.3 प्रगतिवादी आंदोलन का विस्तार और अवसान

प्रगतिशील लेखक संघ का दूसरा सम्मेलन 1938 में कलकत्ता में हुआ। इसका सभापति रवींद्रनाथ ठाकुर को बनाया गया। हालांकि बीमारी के कारण वे सम्मेलन में उपस्थित न हो सके लेकिन उन्होंने अपना लिखित संदेश भेजा था जिसमें उन्होंने लिखा था कि ''जनता से अलग रहकर हम बिल्कुल अजनबी बन जाएँगे। साहित्यकारों को मिलजुल कर उन्हें पहचानना है।......अगर साहित्य मानवता से तादात्म्य स्थापित न कर सका तो वह अपने लक्ष्य और आकांक्षाओं को पाने में विफल रहेगा।''

प्रगतिशील लेखक संघ के विस्तार के साथ लेखकों के व्यापक संयुक्त मोर्चे का सवाल भी उपस्थित हुआ। प्रगतिशील लेखकों के मोर्चे में किस तरह के लेखकों को शामिल किया जाना चाहिए, इसको लेकर बहस चल पड़ी। मार्क्सवादी और गैरमार्क्सवादी लेखकों में ही नहीं स्वयं मार्क्सवादी लेखकों में भी इस बारे में तीखे मतभेद थे। इस बात पर भी बहसें चल रही थीं कि कौन लेखक प्रगतिशील है और कौन प्रतिक्रियावादी। कौन सी साहित्यिक प्रवृत्ति प्रगतिशील है और कौन सी प्रगतिविरोधी। लेकिन इसके बावजूद प्र.ले.सं. के साथ सभी तरह के प्रगतिशील और उदार नजरिए के लेखकों का जुड़ना जारी रहा। प्रगतिशील लेखक संघ ने आजादी के संघर्ष के उस दौर में लेखकों में जनता से जुड़े सवालों के प्रति गहरी वचनबद्धता का माहौल बनाने में जर्बदस्त पहल की थी और जिसका प्रभाव उस समय के लेखन पर साफ तौर पर देखा जा सकता था। इस दौर में बहुत सा ऐसा साहित्य भी लिखा गया जो अंग्रेज सरकार का कोपभाजन बना, जिन पर प्रतिबंध लगाया गया या जिन पर अश्लीलता के आरोप लगाकर मुकदमे दायर किए गये। इसके बावजूद कई नई पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। लेखकों को ऐसे मंच मिले जिनके द्वारा वे नये तरह के साहित्य को जनता तक पहुँचा सकें।

प्रगतिवाद क़ा यह आंदोलन सिर्फ साहित्य तक सीमित नहीं रहा। प्रगतिशील लेखक संघ की पहल से 1943 में भारतीय जन नाट्य संघ (इप्टा) की स्थापना बंबई में की गई। थोड़े समय में ही इप्टा की टोलियाँ देश के कोने–कोने में स्थापित हो गईं और उनके द्वारा फासीवाद, अकाल और भुखमरी और साम्राज्यवादी दमन के विरुद्ध नाटक खेले गये। आजादी के बाद नाटक और सिनेमा की अधिकांश महत्वपूर्ण हस्तियाँ इप्टा से ही जुड़ी थीं। सोवियत संघ पर फासीवाद हमले के बाद फासीवाद के विरुद्ध जगह–जगह सम्मेलन आयोजित हुए जिसमें प्रगतिशील लेखक संघ और इप्टा ने बढ़चढ़ कर हिस्सा लिया।

15 अगस्त 1947 को बंटवारे के साथ देश आजाद हो गया। इसने प्रगतिशील आंदोलन के विकास पर निर्णायक प्रभाव डाला। सितंबर 1947 में इलाहाबाद में अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का विशाल अधिवेशन हुआ। महापंडित राहुल सांकृत्यायन इसके प्रधान सभापति बनाए गए। इसमें पारित घोषणापत्र में कहा गया था कि देश के आजाद होने के बावजूद अब भी ऐसी प्रतिक्रियावादी ताकतें मौजूद हैं जो जनता की खुशहाली को छीनना चाहती है। उस समय बनी नेहरू सरकार को राष्ट्रीय सरकार कहकर स्वागत किया गया। लेकिन इसके बावजूद प्रलेसं, इप्टा तथा इनसे जुड़े लेखकों, कलाकारों और

पत्र–पत्रिकाओं को सरकारी दमन का सामना करना पड़ा। सन् 1949 में प्रगतिशील लेखक संघ का अखिल भारतीय सम्मेलन बंबई के पास भिवंडी में आयोजित किया गया। पहले यह सम्मेलन बंबई में होने वाला था, लेकिन ऐन वक्त पर सरकार द्वारा प्रतिबंध लगा दिए जाने के कारण इसे भिवंडी में किया गया। इस सम्मेलन में हिंदी कवि और आलोचक रामविलास शर्मा को महासचिव बनाया गया। इसमें स्वीकृत घोषणापत्र में कहा गया था कि अगस्त 1947 के बाद भारतीय जनता की स्वाधीनता की लड़ाई एक नये दौर में दाखिल हुई है। भारतीय पूँजीपति वर्ग जो राष्ट्रीय आंदोलन के काल में साम्राज्यवाद से समझौता किया करता था, अब खुले आम उसका गठबंधन साम्राज्यवाद से हो गया है। इस घोषणापत्र में यह घोषित किया गया कि आज लेखक भी दो खेमों में बँटा हुआ है, एक जो शांति और जनवाद की शक्तियों के साथ है, दूसरा जो हिंदुस्तान को साम्राज्य का पिछलग्गु बनाए रखना चाहता है। इन दोनों खेमों के बीच समझौता संभव नहीं है। दूसरा खेमा जनता का ध्यान सही सवालों से हटाने के लिए 'कला कला के लिए' का नारा देता है तथा राजनीतिक दृष्टि से हीन साहित्य की रचना करता है (हंस, जून 1949,)। 1949 की इस समझ को लेकर प्रलेंस के बीच विवाद छिड़ गया। लेखकों के एक समूह ने इस समझ को संकीर्णतावादी कहा। दूसरी ओर साहित्य के मूल्यांकन को लेकर भी विवाद बढ़ता गया। इस स्थिति का लाभ उठाकर 'परिमल' जैसी संस्थाएँ जो प्रगतिवाद का विरोध करती आ रही थीं, सक्रिय हो गई। इसके साथ ही अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सोवियत प्रभाव का मुकाबला करने के लिए अमरीका के नेतृत्त्व में शीतयुद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। सांस्कृतिक स्तर पर इससे निपटने के लिए 'कांग्रेस फॉर कल्चरल फ्रीडम' की स्थापना हुई। भारत में भी यह संगठन सक्रिय हुआ। 1951 में इसका एशियाई सम्मेलन बंबई में आयोजित हुआ। कई भारतीय लेखक जो पहले प्रलेंस से जुड़े थे, इसके साथ जुड़ गए। हिंदी में भी कई ऐसी पत्रिकाएँ निकलने लगीं जिन्होंने सुनियोजित रूप से प्रगतिवाद पर हमला करना शुरू किया। इस तरह अंदरूनी और बाहरी हमले के कारण प्रगतिशील लेखक संघ बिखरने लगा। 1953 में दिल्ली में प्रगतिशील लेखक संघ का पाँचवाँ सम्मेलन हुआ। डॉ. रामविलास शर्मा को संकीर्णतावाद का आरोप लगाकर महासचिव पद से हटा दिया गया और उर्दू लेखक कृश्न चंदर इसके महासचिव बनाए गए। यह सम्मेलन, असल में प्रलेंस का अंतिम सम्मेलन साबित हुआ। हालांकि संगठन इसके बाद भी बना रहा लेकिन जहाँ तक लेखकों को संगठित करने तथा उन्हें रचनात्मक दिशा देने का सवाल है, इसकी सार्थकता समाप्त हो चुकी थी, फिर भी अब भी प्रगतिशील लेखकों की बड़ी संख्या जनवादी और प्रगतिशील साहित्य रचना में जुटी हुई थी।

17.5 प्रगतिशील साहित्य का उदय

हिंदी में प्रगतिशील साहित्य का उदय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के साथ शुरू हुआ यह समझना सही नहीं है। प्रगतिशील साहित्य की रचना उससे पहले ही होनी शुरू हो गई थी। यदि देखें तो इसकी परंपरा भारतेंदु युग से दिखाई देती है जब उस दौर के लेखकों ने भक्ति और शृंगारपरक साहित्य रचने के साथ साथ अपने समय और समाज के ज्यादा बृहत्तर सवालों पर साहित्य लिखना आरंभ किया। कविता में तो इस नये रुझान की अभिव्यक्ति धीरे–धीरे हुई लेकिन गद्य की विधाओं में तो नये सवाल ही प्रमुखता से उभर कर सामने आए। यह प्रवृत्ति लगातार दृढ़ होती गई। प्रेमचंद, प्रसाद, सुदर्शन, विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक आदि लेखकों की कहानियों, उपन्यासों और नाटकों में राष्ट्रीय मुक्ति और जागरण की भावना से ओतप्रोत साहित्य रचा जाने लगा था। यह प्रगतिशील साहित्य ही था। यदि यह साहित्य नहीं रचा जाता तो हिंदी में प्रगतिशील साहित्य की बुनियाद खड़ी नहीं होती। प्रगतिशील साहित्य को विदेशी प्रभांव बताने वाले लेखकों के कुतर्क का जवाब़ यही जनोन्मुखी परंपरा है। इसी ने प्रगतिशील लेखन के लिए अनुकूल माहौल बनाया। इस इकाई में हम प्रगतिशील साहित्य की सभी विधाओं का परिचय नहीं देंगे और अपने को सिर्फ कविता तक ही सीमित रखेंगें क्योंकि कहानी, उपन्यास, नाटक, आलोचना और अन्य गद्य विधाओं के विकास का अध्ययन आप आगे की इकाइयों में करेंगे।

कविता से इतर विधाओं में प्रगतिवाद का उदय कोई नई बात इसलिए नहीं थी कि प्रगतिवाद जिसका मुख्य बल यथार्थवाद पर था, वह कथा साहित्य में पहले ही स्वीकृति पा चुका था। इस संदर्भ में डॉ. नामवर सिंह का कथन विशेष रूप से विचारणीय है। उन्होंने लिखा है, ''प्रगतिवाद के सामाजिक यथार्थवादी दृष्टिकोण के कारण कविता में जितना परिवर्तन हुआ, उतना कहानी–उपन्यास के क्षेत्र में नहीं हुआ। इसका कारण यह था कि प्रेमचंद के युग से ही उपन्यास में यथार्थवादी प्रवृत्ति का उदय हो गया था। अपनी कहानियों और उपन्यासों में प्रेमचंद ने शुरू से ही किसानों और मध्यवर्गीय भद्र पुरुषों के

यथार्थ जीवन का चित्रण किया था। प्रेमचंद के ही समय किस तरह परिस्थितिवश किसान मज़दूर बनने के लिए विवश हो गया था, इसे भी उन्होंने 'गोदान' में अच्छी तरह दिखला दिया था। इसलिए प्रगतिवाद के उदय से अधिक से अधिक यही उम्मीद थी कि प्रेमचंद की परंपरा को और अच्छी तरह आगे बढ़ाने की दृष्टि मिलेगी। प्रेमचंद ने आरंभिक युग के सुधारवादी और आदर्शवादी विचारों से किस तरह क्रमशः छुटकारा पाया और अंत तक आते-आते उनका दृष्टिकोण कितना स्पष्ट हो गया था इसे 'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' की तुलना से अच्छी तरह समझा जा सकता था।"

प्रेमचंद की इस परंपरा को बाद में नागार्जुन, भैरवप्रसाद गुप्त, फणीश्वरनाथ रेणु, आदि लेखकों की कहानियों और उपन्यासों में देखा जा सकता है। मजदूरों के जीवन पर उस तरह नहीं लिखा जा सका क्योंकि जैसा कि नामवर सिंह का मानना था "अब भी भारत कृषि-प्रधान देश है।" प्रगतिवाद के दौर में लेखकों ने कथा साहित्य में मध्यवर्ग के जीवन को ही ज्यादा अभिव्यक्ति दी। अधिकांश प्रगतिशील लेखक इसी वर्ग से आए थे। यशपाल, उपेंद्रनाथ अश्क, अमृतलाल नागर, विष्णु प्रभाकर, अमृत राय, रांगेय राघव, आदि ने मध्यवर्ग के जीवन को ही अपने साहित्य का विषय चुना। मध्यवर्ग के जीवन के इस चित्रण पर टिप्पणी करते हुए नामवर सिंह ने लिखा है, "सन् पैंतीस के बाद मध्यवर्ग के जीवन में काफी परिवर्तन हुआ और इन लेखकों ने इसका यथार्थ चित्रण करने का प्रयत्न किया। सब समय इन्हें सफलता मिल ही गयी हो, यह कहना कठिन है। अक्सर ऐसा हुआ है कि इनके नायक निःस्वत्व हो गये हैं और ओछे ढंग के रोमांस में डूब चले हैं। कभी-कभी नायक को वस्तुस्थिति से अधिक आगे और विद्रोही दिखाने की चेष्टा की गई है। इन सबके बावजूद यह कहा जा सकता है कि कुछ व्यक्तिवादी और सेक्सवादी लेखकों को छोड़कर इस युग के अधिकांश उपन्यासकारों और कहानीकारों ने भरसक मध्यवर्ग की यथार्थ कमजोरियों को चित्रित करने की कोशिश की है।" प्रगतिवाद के दौर में जिस एक और रुझान की तरह नामवर सिंह ने ध्यान खींचा है वह है, ऐतिहासिक कथानक। उन्हीं के शब्दों में "अतीत की विकासोन्मुखी शक्तियों को पहचान कर और उन्हें उपन्यास के सजीव पात्रों के रूप में मूर्तिमान करके इन ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने वर्तमान युग के मुक्तिकामी जनसमुदाय को शक्ति और स्फूर्ति प्रदान की।" ऐतिहासिक उपन्यासों और कहानियों की रचना के क्षेत्र में वृंदावन लाल वर्मा, यशपाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राहुल सांकृत्यायन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

प्रगतिशील रचनाकारों ने अपने उपन्यासों और कहानियों में सिर्फ किसान और मजदूरों के जीवन को ही नहीं प्रस्तुत किया बल्कि स्त्रियों के जीवन की वेदना को भी चित्रित किया। उन्होंने स्त्री-पुरुष संबंधों को नये दृष्टिकोण से पेश किया। उनके चित्रण में कई बार मध्यवर्गीय कुंठाओं की अभिव्यक्ति हो जाती थी लेकिन वे कई तरह की वर्जनाओं को तोड़ने में कामयाब रहे।

प्रगतिशील साहित्य धारा ने जिस एक और क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान किया वह है, आलोचना का क्षेत्र। साहित्य के क्षेत्र में सामाहित यथार्थवाद को रचना का आधार बनाने के लिए जबर्दस्त मुहिम छेड़ने का काम प्रगतिशील आलोचकों ने किया था। उन्होंने आलोचना को गुण-दोष विवेचन से बाहर निकालकर, साहित्य और सौंदर्यशास्त्र की स्वायत्तता से मुक्त कर सामाजिक सरोकारों से जोड़ा। उन्होंने यह भी बताया कि सभी तरह का साहित्य श्रेयस्कर नहीं होता है। वही साहित्य श्रेयस्कर है जिसमें जनता की भावनाओं और इच्छाओं की अभिव्यक्ति हो, जिसमें उनके जीवन के संघर्ष और भविष्य के सपने चित्रित हों। प्रगतिवादी आलोचना ने वस्तु और रूप के बीच विवाद में यह मत प्रकट किया कि साहित्य समाज की उपेक्षा करके नहीं रचा जा सकता। हाँ, इसके लिए उत्कर्ष कला क्षमता का होना भी जरूरी है। उन्होंने वस्तु और रूप के बीच द्वंद्वात्मक संबंधों को व्याख्यायित किया। हिंदी आलोचना के सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्षों को विकसित करने में शिवदान सिंह चौहान, डॉ. रामविलास शर्मा, प्रकाशचंद्र गुप्त, नामवर सिंह, मुक्तिबोध और अमृत राय का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

17.6 हिंदी में प्रगतिशील काव्य की परंपरा

प्रगतिशील कविता का संबंध समाज के अंतर्विरोधों और विकास से है। इसलिए जैसे-जैसे समाज में परिवर्तन होता है, प्रगतिशील कविता में भी परिवर्तन होता है। यही कारण है कि प्रगतिशील कविता हमेशा

एक–सी नहीं रहती। वह समय के अनुसार बदलती रहती है। तीस के दशक में हिंदी कविता में जो परिवर्तन दिखाई दिए थे, उसने उस सुदृढ़ काव्यांदोलन को जन्म दिया जिसे बाद में प्रगतिशील कविता के नाम से जाना गया। लेकिन इससे पहले भी हिंदी की कविता परंपरा में प्रगतिशीलता के तत्व दिखाई देते हैं। यदि हम आधुनिक युग के संदर्भ में ही विचार करें तो प्रगतिशील काव्यधारा की कई विशेषताओं के मूल उत्स हमें भारतेंदु युगीन काव्य से दिखाई देने लगते हैं। मसलन, राष्ट्रीयता की भावना की अभिव्यक्ति इसी युग में प्रकट होने लगी थी। इसी प्रकार द्विवेदी युग में न सिर्फ इस भावना का विकास हुआ बल्कि नवजागरण के प्रभाव के विस्तार के साथ यह प्रश्न अधिक तीव्र स्वर में उभरने लगा था कि 'हम क्या थे, क्या हो गए और क्या होंगे अभी'। इस भावना ने कई ऐसे सामाजिक सवालों को कविता का विषय बनाने के लिए प्रेरित किया जो इससे पहले कभी नहीं उठाए गए थे।

प्रगतिवाद से पूर्व की सबसे शक्तिशाली काव्यधारा, छायावाद, की प्रगतिशील भूमिका पर प्रगतिशील आलोचकों ने विस्तार से प्रकाश डाला है। उन्होंने छायावाद के विकास को स्वाधीनता संघर्ष के साथ जोड़कर देखा और कहा कि जो अंतर्विरोध उस दौर के स्वाधीनता आंदोलन में थे वे ही छायावाद में भी प्रकट हो रहे थे। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार, 'हिंदी साहित्य का वह रूप जिसे हम छायावाद कहते हैं, स्वाधीनता आंदोलन की इस मंजिल को इसकी तमाम असंगतियों और अंतर्विरोधों के साथ प्रकट करता है। छायावादी साहित्य में जहाँ एक तरफ नया उल्लास, नये विकास और नये प्रसार की कामना, देश भक्ति की नयी प्रेरणा, समानता–विश्व बंधुत्व आदि के भाव है, वहाँ दूसरी तरफ उसमें पलायन, रहस्यवाद, प्राचीनता, प्रेम, निराशा, व्यक्तिवाद, काल्पनिक स्वर्ग रचना आदि–आदि की प्रवृत्तियाँ भी मौजूद हैं।'' इसके कारण पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा कि ''किसी भी देश के राष्ट्रीय आंदोलन में, जिसमें आम जनता के क्रांतिकारी वर्ग संगठनों का अभाव होगा, पलायन, निराशा, प्राचीनतावाद के भाव लाजमी तौर से उठेंगे।'' डॉ. नामवर सिंह ने भी छायावाद को उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति कहा जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से। उनका मानना था कि बुद्धिजीवी वर्ग के नेतृत्व में भारतीय जनता ने अपनी राजनीतिक और सामाजिक स्वाधीनता के लिए जो संघर्ष किया उसके कई पहलुओं को छायावाद ने सच्चाई के साथ प्रतिबिंबित किया और यथाशक्ति आगे बढ़ाने में योग दिया।

1930 के दशक तक आते–आते जब स्वाधीनता आंदोलन में किसान–मजदूर जनता की भागीदारी बढ़ने लगी थी, तब छायावाद की प्रासंगिकता भी समाप्त होने लगी थी। दूसरे शब्दों में छायावाद का पतन अवश्यंभावी हो गया था। छायावाद के पतन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का हवाला देते हुए रामविलास शर्मा ने लिखा था, ''सन् 34 के आंदोलन की विफलता ने पूँजीवादी नेताशाही की तरफ से जनता के भ्रमों को काफी दूर किया। स्वाधीनता आंदोलन ने दूसरी मंजिल में कदम रखा। देश में किसानों और मजदूरों के नये वर्ग–संगठन कायम होने लगे और उन्होंने यह कोशिश शुरू की कि राष्ट्रीय आंदोलन को समझौतावाद के रास्ते से मोड़ा जाये। यह परिवर्तन साहित्य में भी दिखाई देता है। राष्ट्रीय नेताशाही के पक्के भक्त प्रेमचंद उससे मुँह मोड़ने लगे। उन्होंने वर्ग समझौते का रास्ता छोड़कर वर्ग–संघर्ष का रास्ता अपनाया। छायावादी कवि अपने कल्पना विलास की स्वयं आलोचना करने लगे। हिंदी में तभी प्रगतिशील साहित्य की चर्चा भी शुरू हुई।''

छायावाद के उत्तरकाल में राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत कविताएँ लिखने की प्रेरणा लेकर जो कवि सामने आए उनमें माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, रामधारी सिंह दिनकर, सुभद्रा कुमारी चौहान, सोहन लाल द्विवेदी आदि प्रमुख थे। उन्होंने ऐसी कविताएँ लिखीं जिनमें क्रांतिकारी भावनाओं का प्रभाव था और जो समाजवादी विचारों के प्रभाव में भी थे। पंत और निराला की कविताओं में परिवर्तन के संकेत मिलने लगे थे। पंत अब 'युगांत' 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' के माध्यम से साम्यवादी प्रभाव में एक नये तरह का समाज बनाने का स्वप्न व्यक्त कर रहे थे। हालांकि उनकी कविताओं में सामान्य जन के प्रति सहानुभूति बौद्धिक ही अधिक थी लेकिन उस समय इसका भी महत्व था। बच्चन, भगवती चरण वर्मा, दिनकर आदि की कविताओं में छायावाद की आध्यात्मिकता और रहस्यात्मकता की बजाए लौकिक जीवन के प्रति गहरा लगाव व्यक्त हो रहा था। 'इस पार प्रिये मधु है, तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा?' यह भाव इस दौर की कविता में जीवन के प्रति गहरे विश्वास को व्यक्त कर रहा था। कविता में लौकिकता की यह अभिव्यक्ति धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक समाज बनाने के प्रयत्न का ही हिस्सा थी और इसी कारण यह प्रगतिशील सोच का ही विस्तार था।

लेकिन इसी दौर में कवियों की एक नयी पीढ़ी भी सामने आ रही थी जो मार्क्सवाद और साम्यवाद के प्रभाव में थी और जिन्होंने छायावाद के रूमानी प्रभाव से मुक्त होकर यथार्थवाद को वामपंथी नजरिए से कविता में पेश किया। इन कवियों में रांगेय राघव, नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल अंचल, रामविलास शर्मा, शिवमंगल सिंह सुमन, नागार्जुन, शील, केदारनाथ अग्रवाल, मुक्तिबोध, त्रिलोचन शास्त्री, शंकर शैलेंद्र आदि प्रमुख थे। इन कवियों ने दूसरे विश्व युद्ध के दौरान फासीवाद के विरुद्ध सोवियत संघ का खुलकर समर्थन किया यहाँ तक कि सोहन लाल द्विवेदी जैसे कवियों ने रूस की लाल सेना का गुणगान करते हुए कहा था कि 'तुम हारे तो जग हार गया, तुम जीते तो है विश्व शेष'। इस तरह की कविताओं के कारण ही उस समय प्रगतिशील काव्यांदोलन पर अभारतीयता, रूस के अंध–गुणगान, साम्यवाद के प्रचार आदि का आरोप लगाया गया (डॉ. लल्लन राय, पृ. 57)। प्रगतिशील कवियों ने अपनी कविता को शोषित और उत्पीड़ित जनता विशेषतः किसान और मजदूर जनता की तरफ मोड़ा और उनके जीवन को कविता का विषय बनाया। पंत ने ग्रामीण जीवन के जो चित्र प्रस्तुत किए उसकी प्रेरणा उन्हें इस नयी दृष्टि से ही प्राप्त हुई थी। पंत ने लिखा था, 'देख रहा हूँ आज विश्व को मैं ग्रामीण नयन से' और 'यहाँ अकेला मानव ही रे चिर विषण्ण जीवन–मृत'। निराला ने 'कुकुरमुत्ता', 'बेला' और 'नये पत्ते' में किसानों और मेहनतकशों की मुक्ति के स्वप्न को कविता के माध्यम से सच करने की कोशिश की। प्रगतिशील कविता वस्तु और शिल्प दोनों दृष्टियों से बहुमुखी और वैविध्यपूर्ण थी। यदि एक ओर इसमें किसान और मजदूर सहित मेहनतकश जनता के यथार्थ का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण था, तो, दूसरी ओर, इसमें उच्च और मध्य वर्ग के प्रति आलोचनात्मक रुख अपनाया गया था। यदि इसमें फासीवाद का विरोध और सोवियत संघ के प्रति समर्थन की अभिव्यक्ति हो रही थी, तो, देशभक्ति की भावना की अभिव्यक्ति भी हो रही थी और इस संदर्भ में साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के विरुद्ध जन संघर्षों को कविता के माध्यम से व्यक्त किया जा रहा था। प्रगतिशील कविता में समाज में व्याप्त रूढ़िवाद की तीखी आलोचना थी, तो, सांप्रदायिकता और जातिवाद के जहर के खिलाफ भी उसमें तीखी भर्त्सना का भाव था। प्रगतिवाद ने स्त्री की मुक्ति को भी अपनी रचना का विषय बनाया और दलितों को भी। उनकी कविताओं में जीवन और जगत् के प्रति गहरा लगाव व्यक्त होता है। प्रकृति जीवन और जगत् से अलग नहीं है इसलिए प्रकृति और सौंदर्य का जैसा चित्रण हमें प्रगतिशील कवियों में मिलता है वह अन्यत्र मुश्किल है।

प्रगतिशील कवियों ने कविता में विषय वस्तु के महत्व को समझते हुए यह जान लिया था कि कविता सिर्फ जनता के प्रति गहरी प्रतिबद्धता और प्रगतिशील विषयों पर लिखी जाकर ही महान नहीं बनती यदि कवि की प्रतिबद्धता सच्ची और गहरी है तो वह अपनी बात को साहित्य के माध्यम से प्रभावशाली रूप में कहने के लिए कविता के उपकरणों का प्रयोग भी वैसी ही गहरी प्रतिबद्धता के साथ करेगा। वह अपनी बात कहने के लिए अब तक आजमाए गए काव्य उपकरणों का अनुकरण ही नहीं करेगा बल्कि नए उपकरणों की खोज भी करेगा। यही कारण है कि प्रगतिशील कविता के प्रमुख स्तंभ नागार्जुन, मुक्तिबोध, शमशेर, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन आदि में से किसी की भी कविता दूसरों की कविता का अनुकरण नहीं है। विषय–वस्तु और शिल्प दोनों दृष्टियों से प्रगतिशील कविता की विविधता हिंदी काव्य परंपरा की समृद्धि का प्रतीक कही जा सकती है।

एक आंदोलन के रूप में प्रगतिवाद का अवसान भले ही पचास के आसपास हो गया हो, लेकिन प्रगतिशील कविता का अवसान कभी नहीं हुआ। प्रयोगवाद, नयी कविता के दौर में प्रगतिशील कविता विचार और शिल्प दोनों स्तरों पर अपनी अभिव्यक्ति के लिए संघर्ष करती रही और अंततः सत्तर के दशक में एकबार फिर प्रगतिशील और जनवादी कविता व्यक्तिवादी काव्यधारा को पीछे धकेलती हुए अपने को स्थापित करने में कामयाब रही। हिंदी में प्रगतिशील कविता की परंपरा के संक्षिप्त परिचय के बाद आइए, हम प्रगतिशील कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों का परिचय प्राप्त करें।

17.7 प्रगतिशील कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

प्रगतिशील कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों पर विचार करते हुए अभी तक हमने जो बातचीत की है, उसको ध्यान में रखना होगा। जैसा कि डॉ. लल्लन राय का कहना है, "......प्रगति संबंधी मान्यताएँ किसी स्थिर अवधारणा पर आधारित नहीं रही हैं। समयानुकूल उनमें परिवर्तन हुआ है। स्वाधीनतापूर्व उसका जो

रुख–रुझान था, स्वाधीनता के बाद उसमें स्पष्ट रूप से अंतर दिखाई देगा। इस अंतर के बावजूद प्रगतिशील कविता के सामने हमेशा एक केंद्रीय मुद्दा रहा है, वह है देश की बहुसंख्यक शोषित–उत्पीड़ित जनता की वास्तविक मुक्ति। अतः हिन्दी प्रगतिशील कविता की अन्यान्य प्रवृत्तियों में उसका केंद्रीय मुद्दा अनुस्यूत रहा है। चाहे राष्ट्रीय स्वाधीनता का प्रश्न हो, चाहे शोषित–उत्पीड़ित जन–जीवन के प्रति प्रेम हो या शोषक–उत्पीड़क वर्ग के प्रति आक्रोश, चाहे रूढ़िवाद और जातीय भेदभाव का विरोध हो या सांप्रदायिक सद्भाव सर्वत्र हो, यह केंद्रीय मुद्दा उसके सामने रहा है। केवल कविता की अंतर्वस्तु ही नहीं, वरन् उसके शिल्प और कलात्मक सौंदर्य के प्रतिमानों के ग्रहण और परित्याग में भी यही केंद्रीय मुद्दा उसके सामने दिखाई देगा।" इस कथन के संदर्भ में ही हम यहाँ प्रगतिशील कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों पर विचार करेंगे।

17.7.1 राष्ट्रीयता की भावना की अभिव्यक्ति

प्रगतिवाद में राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति एक प्रमुख विशेषता रही है। यह वह दौर था जब देश अंग्रेजी राजसत्ता के अधीन था और उससे मुक्ति का संघर्ष दिन–ब–दिन तेज होता जा रहा था। इस संघर्ष में जनता के व्यापक हिस्से शामिल होते जा रहे थे। उत्तर छायावादी कविता में तो देशभक्ति एक अहम् मसला हो गया था। उस समय के कई लेखक स्वयं भी राष्ट्रीय आंदोलन में हिस्सा ले रहे थे। कविता करना और आजादी के संघर्ष में भाग लेना उनके लिए अलग–अलग बातें नहीं थी। छायावाद के दौर से यह एक महत्त्वपूर्ण बदलाव था। सुभद्रा कुमारी चौहान, नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी, दिनकर ही नहीं बाद में प्रगतिवाद से जुड़े राहुल सांकृत्यायन, नागार्जुन, शील, यशपाल, शिव वर्मा, मन्मंथनाथ गुप्त, हंसराज रहबर आदि कई साहित्यकार राष्ट्रीय मुक्ति के आंदोलन में सक्रिय रूप से शामिल हुए।

प्रगतिशील कविता में व्यक्त राष्ट्रीय भावना छायावादी राष्ट्रीय भावना से कई मायनों में अलग थी। इन कवियों ने जहाँ एक ओर देशभक्ति की भावना को क्रांतिकारी धार दी, तो दूसरी ओर, उन्होंने उसे सामाजिक मुक्ति के सवाल से भी जोड़ा। उन्होंने इतना ही कहना पर्याप्त नहीं समझा कि देश को विदेशी दासता से मुक्त होना चाहिए बल्कि यह भी कि आजाद भारत किस तरह का होगा और राजसत्ता पर किसका शासन होगा। क्या वास्तव में जनता का राज होगा? उन्होंने गांधी युग के हिंसा और अहिंसा के सवाल को भी अप्रासांगिक ठहराकर अस्वीकार कर दिया। केदारनाथ अग्रवाल ने लिखा था, "हिंसा और अहिंसा क्या है/जीवन से बढ़कर हिंसा क्या है?" प्रगतिशील कविता ने साहित्य और कला को राजनीति से निरपेक्ष रखने की धारणा को भी अस्वीकार किया। उन्होंने 1947 में प्राप्त हुई आजादी के चरित्र को लेकर सवाल उठाए। कवियों ने यह सवाल उठाया कि क्या आजादी के बाद कुछ भी बदला है। नागार्जुन ने लिखा था :

> पुलिस और पलटन के हाथी कितना चारा खाते हैं,
> वही रंग है, वही ढंग है, फरक नहीं कुछ पाते हैं।
> देश–भक्ति की सनद मिल रही आये दिन शैतानों को,
> डांट–डपट उपदेश मिल रहे, दुखी मजूर–किसानों को।

आजादी के बाद की निराशाजनक तस्वीर ने प्रगतिशील रचनाकारों को उस समय की राष्ट्रीय सरकार की आलोचना करने को प्रेरित किया। लेकिन मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी वर्ग का एक हिस्सा इससे भिन्न ढंग से सोच रहा था। वे किसान–मजदूरों के हितों से ज्यादा अपने हितों को तरजीह दे रहे थे और उन्हें उम्मीद थी कि ऐसे बदलाव होंगे जो उनके हित में जाएँगे। यही कारण है कि जल्दी ही कवियों का एक हिस्सा देशभक्ति और जनता के प्रति लगाव का भाव भूल गया और अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति पर ज्यादा बल देने लगा।

17.7.2 वामपंथी विचारधारा और राजनीति का प्रभाव

प्रगतिशील कविता पर मार्क्सवाद के प्रभाव का कारण सन् '30 के बाद की परिस्थितियाँ हैं। 1917 में रूस की बोल्शेविक क्रांति और सोवियत संघ के अस्तित्व में आने ने दुनिया भर के कलाकारों और बुद्धिजीवियों को प्रभावित और प्रेरित किया था। सोवियत संघ ने उपनिवेशवाद के खिलाफ संघर्ष को अपना

समर्थन दिया और दूसरे विश्व युद्ध के दौरान फासीवाद पर सोवियत संघ की लाल सेना की निर्णायक जीत ने दुनिया भर की वामपंथी और प्रगतिशील ताकतों के हौंसले बुलंद किये। इसका असर भारत के लेखकों और बुद्धिजीवियों पर भी पड़ना स्वाभाविक था। मैथिलीशरण गुप्त से लेकर सुमित्रनंदन पंत ने मार्क्स और मार्क्सवाद के प्रति कविताओं के माध्यम से अपने श्रद्धाभाव का इजहार किया। जब हिटलर की सेना सोवियत संघ में मास्को तक पहुँच गई और बाद में उसे बर्लिन तक खदेड़ा गया तो इस ऐतिहासिक संघर्ष को लेकर हिंदी कवियों ने ढेरों कविताएँ लिखीं। मास्को–मुक्ति पर मुक्तिबोध ने 'लाल सलाम' कविता लिखी, शमशेर ने 'वाम वाम वाम दिशा' कविता द्वारा वामपंथ की अपरिहार्यता को रेखांकित किया :

> भारत का
> भूत–वर्तमान औ' भविष्य का वितान लिये
> काल–मान–विज्ञ मार्क्स–मान में तुला हुआ
> वाम वाम वाम दिशा;
> समय साम्यवादी।

सोवियत रूस में जो नया देश और नया मानव निर्मित हो रहा था, उसी ने यह विश्वास उत्पन्न किया था कि आज का समय साम्यवादी है। लेकिन बाद में जब सोवियत सेना ने चेकोस्लोवाकिया और हंगरी में वहाँ की समाजवादी सरकारों को बचाने के लिए प्रवेश किया, जब स्टालिन के शासन के कई नकारात्मक पहलू सामने आए और जब अमरीका के नेतृत्व में शीतयुद्ध का प्रभाव तीसरी दुनिया के देशों के बुद्धिजीवियों में बढ़ने लगा तो सोवियत संघ ही नहीं मार्क्सवाद के प्रति लेखकों और बुद्धिजीवियों का आकर्षण कम होने लगा। कई ऐसे कवि जो आरंभ में प्रगतिवाद के साथ थे, बाद में उससे अलग ही नहीं उसके विरोधी भी हो गये।

17.7.3 शोषित-उत्पीड़ित जनता से जुड़ाव

प्रगतिशील कविता में पहली बार किसान–मजदूरों के प्रति गहरी सहानुभूति और लगाव की अभिव्यक्ति हुई और शोषण–उत्पीड़न से मुक्ति के सामूहिक प्रयासों की जरूरत को रेखांकित ही नहीं किया बल्कि यह भी बताया कि जन क्रांति इसका एकमात्र रास्ता है। मुक्तिबोध ने इस संदर्भ में यह भी प्रश्न उठाया कि मध्यवर्ग को यह तय करना होगा कि वे इस संघर्ष में किस ओर हैं:

> बशर्ते तय करो,
> किस ओर हो तुम, अब
> सुनहले ऊर्ध्व आसन के
> दबाते पक्ष में, अथवा
> कहीं उससे लुटी–टूटी
> अँधेरी निम्न कक्षा में तुम्हारा मन
> कहाँ हो तुम?

(चकमक की चिनगारियाँ)

प्रगतिशील कविता के दौर में ऐसी बहुत सी कविताएँ लिखी गईं जिनमें जनता के वेदना की ही अभिव्यक्ति ही नहीं थी बल्कि उनकी संघर्ष क्षमता को भी वाणी दी गई थी। कवियों ने इस बात को खास तौर पर रेखांकित किया था कि एक रचनाकार के लिए मुक्ति का रास्ता जनता के साथ जुड़ने में ही है। नागार्जुन, केदार, शील आदि ने अपनी कविताओं के माध्यम से जनता की अदम्य मुक्ति आकांक्षा को व्यक्त किया। इस संदर्भ में यह भी ध्यान देने वाली बात है कि उन्होंने उन ताकतों पर जमकर प्रहार किया जो जनता की दुर्दशा के लिए जिम्मेदार हैं। नागार्जुन की कविता के संदर्भ में टिप्पणी करते हुए डॉ. लल्लन राय ने जो कहा है, वह बात संपूर्ण प्रगतिशील कविता के बारे में भी कही जा सकती है। वे लिखते हैं, "वर्तमान शोषणमूलक व्यवस्था, राजनीतिक नेतृत्व का छल–छद्म, साम्राज्यवाद, पूँजीवाद, सामंतवाद शासन–तंत्र, अर्थनीति, धर्मनीति, किसी भी प्रकार का अन्याय, अत्याचार, पाखंड आदि जो शोषित–उत्पीड़ित जनता के हितों के विरुद्ध पड़ता है, नागार्जुन ने उस पर करारा प्रहार किया है।"

प्रगतिशील कविता की यह विशेषता रही है कि उन्होंने किसान और धरती के प्रति अपने अनुराग की बार बार अभिव्यक्ति की है। मेहनतकश जनता के प्रति इसी अनुराग के कारण त्रिलोचन जैसे कवि यह कह सके कि 'जिस समाज का तू सपना है/जिस समाज का तू अपना है/मैं भी उस समाज का जन हूँ'। इसी भावना ने कवियों को ग्रामीण जीवन के चित्रण की ओर खास तौर पर आकर्षित किया।

17.7.4 ग्राम्य जीवन के प्रति लगाव

हिंदी के अधिकांश प्रगतिशील कवियों का संबंध गाँवों से था इसलिए यह स्वाभाविक था कि उनकी कविता में ग्राम्य जीवन के चित्रण पर अधिक बल होता। नरेंद्र शर्मा, केदार, नागार्जुन, रामविलास शर्मा, त्रिलोचन, शील आदि की कविताओं में ग्राम्य जीवन की प्रमुखता का यही कारण था। प्रगतिवाद से पूर्व के काव्य में ग्राम्य जीवन की अभिव्यक्ति आमतौर पर रूमानी किस्म की थी, जिसका मूल भाव कुछ इस तरह का होता 'अहा! ग्राम्य जीवन भी क्या है?'। यद्यपि पंतजी ने अपनी प्रगतिशील कविता की शुरुआत ग्राम्य जीवन की अभिव्यक्ति से ही की थी और निराला की कविताओं में भी ग्राम्य जीवन के प्रभावशाली चित्र मौजूद हैं लेकिन ग्राम्य जीवन में व्याप्त विषमताओं, विडंबनाओं और संघर्षों का जैसा चित्रण प्रगतिशील कविता में मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इसका अर्थ यह नहीं है कि ग्राम्य जीवन के चित्रण में विविधता का अभाव है। प्रगतिशील कवियों ने ग्राम प्रकृति और ग्राम परिवेश के भी बहुरंगी चित्र अपनी कविताओं में अंकित किए हैं। इस दृष्टि से नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन की कविताएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नागार्जुन की कविता में मिथिलांचल, केदार के यहाँ बुंदेलखंड और त्रिलोचन की कविता में अवध जनपद का सौंदर्य जैसे मूर्तिमान हो उठा है। ये कवि प्रकृति का चित्रण करते हुए भी कभी भी वहाँ के लोगों और वहाँ के सामाजिक जीवन को नहीं भूलते। केदार की कविता का यह अंश इसका ज्वलंत प्रमाण है:

> "धूप चमकती है चाँदी की साड़ी पहने
> मैके में आयी बेटी की तरह मगन है
> फूली सरसों की छाती से लिपट गयी है
> जैसे दो हमजोली सखियाँ गले मिली हैं
> भैया की बाहों से छूटी भौजायी–सी
> लहंगे की लहराती लचती हवा चली है।"

प्रगतिशील कविता में व्यक्त ग्राम्य जीवन की विशेषताओं को हम डॉ. लल्लन राय के शब्दों में इस तरह से रख सकते हैं: "वस्तुतः प्रगतिशील कवि गाँव के जन–जीवन में शरीक होकर, उनके सुख–दुख में सुखी दुखी होते हुए, उनकी कमियों को सहानुभूतिपूर्वक रेखांकित करते हुए, उनकी अपार क्षमता से उन्हें परिचित कराते हुए, उनके आस–पास छिपे अपार सौंदर्य और वैभव को उद्घाटित करते हुए और उनमें स्वयं रस लेते हुए, उन्हीं में से एक बनकर सामने आते हैं। उनके साथ होकर, उनके साथ रहकर ही, उन्हीं के भाव–कल्प से, उन्हीं की दृष्टि से, उनके खेत–खलिहान, उनके बाग–बगीचों, उनके संध्या–प्रातः, उनके सूरज–चांद और मेघ को इन कवियों ने अपनी सौंदर्यानुभूति का माध्यम बनाया है। इसलिए उनकी एतद्विषयक कविताओं में उनका अपना जीवन भी उच्छल भाव से अभिव्यक्त हुआ है।"

17.7.5 शोषक सत्ता का विरोध

प्रगतिशील कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति यह है कि इसमें पूँजीवादी, सामंतवादी और साम्राज्यवादी शोषक सत्ता का विरोध लगातार दिखाई देता है। जब प्रगतिशील कवि मेहनतकश जनता के समर्थन में खड़े होते हैं और उनका शोषण–उत्पीड़न करने वाले वर्गों का विरोध करते हैं तो जाहिर है कि वे पूँजीवाद, सामंतवाद और साम्राज्यवाद का विरोध करेंगे। आजादी के पहले प्रगतिशील कविता की मुख्य धारा पूँजीवादी–साम्राज्यवादी ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध थी लेकिन आजादी के बाद उनकी धारा सामंतवादी–पूंजीवादी भारतीय राजसत्ता के खिलाफ हो गई। इसका अर्थ यह नहीं था कि आजादी से पहले प्रगतिवाद ने सामंतवाद का विरोध नहीं किया और न ही इसका मतलब यह है कि आजादी के बाद साम्राज्यवाद का विरोध समाप्त हो गया। फिर भी, प्रगतिशील साहित्य में तत्कालीन राजसत्ता का विरोध एक मुख्य मुद्दा था।

सामंतवाद का विरोध नवजागरण के दौर से ही हिंदी साहित्य का एक ज्वलंत विषय रहा है। हम पाते हैं कि हिंदी कविता छायावाद तक सामंतवाद का विरोध करते हुए लोकतंत्र धर्मनिरपेक्षता और समानता के आधुनिक जीवन मूल्यों की तरफ बढ़ रही थी, लेकिन प्रगतिवाद से पूर्व की कविताओं में सामंतवादी जीवन मूल्यों से पूरी तरह मुक्ति भी नहीं मिल पाई थी। पुनरुत्थानवादी प्रभाव की बात इसी परिप्रेक्ष्य में कही जाती रही है। लेकिन प्रगतिशील आंदोलन ने सामंतवाद और पूँजीवाद के प्रति संघर्ष को मुख्य मुद्दा बनाया जिसकी अभिव्यक्ति निराला जैसे कवियों के यहाँ भी हम देख सकते हैं। निराला की 'बादल राग' कविता इस दृष्टि से उल्लेखनीय है जो प्रगतिशील आंदोलन से पूर्व ही लिखी जा चुकी थी। निराला के यहाँ प्रगतिशील काव्यांदोलन के दौर में तो इस तरह की कविताएँ मुख्य स्वर बन गई। बाद में, नागार्जुन, केदार, शील आदि की कविताओं में सामंतवादी शोषण के विभिन्न रूपों पर तीखा प्रहार किया गया है।

प्रगतिशील कवियों ने सामंतवाद के साथ–साथ पूँजीवादी शोषण के प्रति भी अपना गहरा आक्रोश व्यक्त किया है। पूँजीवाद के शोषक–मारक रूप की विकरालता का चित्रण करते हुए कवियों ने इस बात का आह्वान किया था कि इसका नाश ही इससे मुक्ति का मार्ग है।

"तेरे हास में भी रोग–कृमि हैं उग्र
तेरा नाश तुझ पर क्रुद्ध, तुझ पर व्यग्र
मेरी ज्वाल, जन की ज्वाल होकर एक
अपनी उष्णता से धो चले अविवेक
तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ
तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ।"

पूँजीवादी सत्ता के विरोध ने ही कवियों को क्रांति की आवश्यकता का एहसास कराया जिसने मुक्तिबोध को 'अंधेरे में' जैसी अमर कविता लिखने के लिए प्रेरित किया। सामंतवाद–साम्राज्यवाद–पूँजीवाद के विरोध ने प्रगतिशील कविता को विश्व मानवता से प्रतिबद्ध किया। वे दुनिया में कहीं भी साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के कारण जनता पर होने वाले अत्याचारों का विरोध करने में सक्षम हो सके। दुनिया के लोगों के प्रति बंधुत्व का भाव भी इसी कारण पैदा हो सका। वे यह भी पहचान सके कि साम्राज्यवाद और पूँजीवाद अपने लाभ–लोभ के लिए दुनिया को लगातार युद्ध में झोंक सकते हैं। दूसरे विश्व युद्ध के अंत में अमरीका द्वारा जापान के दो शहरों पर एटम बम गिराया जाना इस बात का प्रमाण है। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में साम्राज्यवादी देशों ने मानवता का नाश करने वाले हथियारों का जखीरा खड़ा किया। उसने दुनिया को भयावह स्थिति में ला खड़ा किया है। यही कारण है कि प्रगतिशील कवि युद्धोन्माद का विरोध करने और शांति का प्रसार करने के लिए भी आगे आये। इस दृष्टि से शमशेर की कविता 'अमर का राग' खास तौर पर उल्लेखनीय है।

17.7.6 सामाजिक परिवर्तन पर बल

प्रगतिशील कविता की एक अन्य प्रवृत्ति रही है सामाजिक यथार्थ के चित्रण पर बल। इस संदर्भ में नामवर सिंह की यह बात खास तौर पर उल्लेखनीय है। उनका कहना है, "जिस तरह कल्पनाप्रवण अंतर्दृष्टि छायावाद की विशेषता है और अंतर्मुखी बौद्धिक दृष्टि प्रयोगवाद की; उसी तरह सामाजिक यथार्थ दृष्टि प्रगतिवाद की विशेषता है।" इसी सामाजिक यथार्थ दृष्टि के कारण ही वे समाज में व्याप्त कई ऐसी विकृतियों का विरोध करने में सक्षम हो सके जिसके कारण समाज का एक बड़ा हिस्सा नारकीय और पराधीन जीवन जीने के लिए अभिशप्त था। नारी की पराधीनता, दलितों का उत्पीड़न तथा शोषण और सांप्रदायिक विद्वेष के खिलाफ प्रगतिशील कवियों ने लगातार आवाज उठाई। वे यह जानते थे कि ये चीजें सिर्फ पूँजीवाद और सामंतवाद के खिलाफ जहर उगलने से ही समाप्त नहीं होंगी और न ही राजनीतिक परिवर्तनों से ही जातिवाद, सांप्रदायिकता और नारी मुक्ति के प्रश्न एक बारगी हल हो सकते हैं। इसके लिए जनता की चेतना को बदलने की भी जरूरत है। यही कारण है कि प्रगतिशील कविता में इन विषयों पर अत्यंत मार्मिक कविताएँ लिखी गईं जिनका मकसद यही था कि जनता में जाति, धर्म, लिंग और भाषा की भिन्नताओं के बावजूद व्यापक एकता कायम हो सकी। प्रगतिशील कवियों ने ऐसी सामाजिक विषमताओं, रूढ़ियों और बंधनों का भी विरोध किया जिनके कारण लोगों में नरक से निकलने की इच्छा शक्ति भी समाप्त हो जाती है। वे अपने जीवन में आने वाली सारी मुश्किलों को ईश्वर और

भाग्य का खेल समझकर चुपचाप झेलते रहते हैं। प्रगतिशील कविता ने सामाजिक यथार्थ के कुछ अनछुए और स्वस्थ चित्र भी प्रस्तुत किए हैं, खासतौर पर पति–पत्नी के संबंध, पिता–पुत्र के संबंध और इसी तरह के आत्मीय संबंधों के चित्र उनकी कविता को आत्मीय भावबोध से भर देते हैं।

प्रगतिशील कविता के बारे में आमतौर पर यह धारणा फैली हुई है कि वह राजनीतिक कविता है और जिसका काम प्रचार करना है। लेकिन यह सच नहीं है। सच्चाई यह है कि प्रगतिवाद जीवन के व्यापक और विराट सत्य को अभिव्यक्त करता है। जीवन और जगत् में ऐसा कुछ भी नहीं है जो प्रगतिशील कविता के बाहर है। हाँ, हर कविता में उनकी मुख्य प्रतिज्ञा जनता के प्रति गहरी आस्था और उसकी मुक्ति की कामना है।

17.8 प्रगतिशील कविता की शिल्पगत प्रवृतियाँ

प्रगतिशील कविता के बारे में उनके आलोचकों का आरोप है कि वे कविता में शिल्प पक्ष की उपेक्षा करते हैं और वस्तु को ही प्रमुखता देते हैं इसके कारण उनकी कविताएँ प्रचारात्मक ज्यादा हो जाती हैं और उनका कलात्मक मूल्य कम हो जाता है। यह बात प्रगतिवाद के आरंभिक दौर के लिए हो सकता है कुछ हद तक सत्य हो, लेकिन इसे आज नकारने के लिए विशेष प्रमाण देने की जरूरत नहीं है। नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर, मुक्तिबोध और त्रिलोचन ही नहीं दूसरे भी कई प्रगतिशील कवियों की कविताएँ इस बात का प्रमाण है कि प्रगतिशील कविता में रूप और शिल्प की कभी उपेक्षा नहीं हुई। हाँ, यह जरूर है कि किसी भी काव्य प्रवृत्ति में सभी कवि एक सी प्रतिभा के नहीं होते और न ही सभी कवियों की कविताएँ एक समान उकृष्ट होती हैं। इस संदर्भ में डॉ. नामवर सिंह का उक्त कथन उल्लेखनीय है: "प्रगतिशील कविता के बारे में अक्सर कहा जाता है कि उसमें कलापक्ष की अवहेलना की जाती है; यदि इसका अर्थ यह है कि प्रगतिशील कवि प्रयोगवादियों की तरह कलापक्ष पर बहुत जोर नहीं देते तो यह ठीक है। बहुत सजाव–सिंगार और पेचीदगी प्रगतिशील कविता में नहीं मिलती। अपनी बात को कितना सुलझाकर उसे कितने सहज ढंग से कह दिया जाए––यही प्रगतिशील कवि का प्रयत्न रहता है। उसके भावों की तरह भाषा भी गाँठ रहित होती है। प्रगतिशील कवि अपना हर शब्द और हर वाक्य चमत्कारपूर्ण बनाने की चेष्टा नहीं करता।" लेकिन अपनी बात को प्रभावशाली बनाने के लिए प्रगतिशील कवि कविता के सभी तरह के उपकरणों का प्रयोग करने से संकोच नहीं करता। छंदबद्ध और छंदमुक्त, देशी और विदेशी, लोक और अभिजात सभी तरह के शिल्प प्रयोग हमें प्रगतिशील कविता में देखने को मिल जाएँगे। भाषा के प्रयोग के प्रति प्रगतिशील कवि बहुत सावधान रहते हैं। वे भाषा के प्रयोग में किसी तरह के बंधन को स्वीकार नहीं करते। तत्सम, तद्‌भव, देशज, विदेशी किसी भी ऐसे शब्दों का प्रयोग वे कर सकते हैं जिनसे कि उनकी बात प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त हो सके। कविता में जितने तरह के बिंबों और प्रतीकों का प्रयोग प्रगतिशील कवियों ने किया है, वह अनुपम है। यदि नागार्जुन की कविता में व्यंग्य का उत्कर्ष नजर आता है, तो मुक्तिबोध ने फैंटेसी जैसे बिल्कुल नये शिल्पविधान का प्रयोग कर हिंदी कविता को ऐसी ऊँचाई दी है, जिसकी बराबरी करना आसान नहीं है। त्रिलोचन ने हिंदी में सानेट जैसे विदेशी छंद को लोक छंद का रूप दे दिया है तो शमशेर की कविता के बिंबों के आगे प्रयोगवादियों के बिंब फीके नजर आने लगते हैं। प्रगतिशील कविता ने हिंदी कविता की भाषा को तत्सम शब्दावली के अभिजात कुहासे से निकालकर आम बोलचाल के नजदीक ला दिया। नागार्जुन, केदार, त्रिलोचन आदि ने तो उसे जनपदीय भाषा से समृद्ध कर नयी प्राणशक्ति प्रदान की।

17.9 सारांश

इस इकाई में आपने प्रगतिशील साहित्य का परिचय प्राप्त किया है। सबसे पहले हमने प्रगतिशीलता के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य को समझाने का प्रयास किया है। प्रगतिवाद क्या है, मार्क्सवाद से उसका क्या संबंध है और प्रगतिवादी साहित्य सिद्धांत की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं, इस संदर्भ में हमने बताया कि मार्क्स समाज के विकास की एक वैज्ञानिक विचारधारा है जो सामाजिक परिवर्तनों की व्याख्या ही नहीं करती बल्कि उसके रूपांतरण के उपायों को भी प्रस्तुत करती है। प्रगतिवादी साहित्य सिद्धांत बताता है कि साहित्य का

उद्देश्य क्या होना चाहिए। वह जनता की भावनाओं, आकांक्षाओं और सपनों को व्यक्त करने पर बल देता है। वह वस्तु पर बल देकर भी रूप की उपेक्षा नहीं करता।

प्रगतिवाद ने आंदोलन का रूप बीसवीं सदी के तीसरे दशक में लिया था, जब दुनिया में फासीवाद के उदय के कारण विश्वयुद्ध का आसन्न संकट उपस्थित हो गया था। हमारे यहाँ आजादी का आंदोलन भी मध्यवर्ग की सीमाओं से पार जाकर जनता का आंदोलन बन गया था। किसानों और मजदूरों की भागीदारी ने आंदोलन के चरित्र को बदल डाला था और देश में वामपंथ की ताकतें उभरने लगी थीं।

प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना 1936 में लखनऊ में हुई थी जिसका सभापतित्व प्रेमचंद ने किया था। लेकिन लेखक संघ बनाने के प्रयास इससे पहले से शुरू हो गये थे। दुनिया के दूसरे देशों में फासीवाद के विरुद्ध संस्कृतिकर्मी संगठित हो रहे थे। भारत में भी उपनिवेशवाद के विरुद्ध लेखक प्रगतिशाली लेखक संघ के झंडे तले एकत्र हुए। प्रगतिशील लेखक संघ अखिल भारतीय आंदोलन था। इसमें सभी भारतीय भाषाओं के लेखक शामिल थे। प्र.ले.सं. ने भारतीय जन नाट्य संघ (इप्टा) की स्थापना की भी प्रेरणा दी। आजादी के कुछ सालों बाद इस आंदोलन में राजसत्ता के चरित्र को लेकर और साहित्यकारों को संगठित करने के सवाल पर बढ़ते मतभेदों के कारण संगठन बिखरने लगा।

प्रगतिशील साहित्य का उदय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना से पहले ही होने लगा था। इसने साहित्य को गहरे तक प्रभावित किया। प्रगतिशील साहित्य सभी विधाओं में अपने को अभिव्यक्त कर रहा था लेकिन इस इकाई में हमने कविता का ही विस्तार से परिचय दिया है।

प्रगतिशील साहित्य की कुछ प्रमुख प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैः राष्ट्रीयता की भावना की अभिव्यक्ति, वामपंथी विचारधारा और राजनीति का प्रभाव, शोषित–उत्पीड़ित जनता से जुड़ाव, ग्राम्य जीवन के प्रति लगाव, शोषक सत्ता का विरोध और सामाजिक परिवर्तन पर बल जिसमें नारी, दलित के शोषण और उत्पीड़न का विरोध शामिल है। साथ ही, सांप्रदायिकता और धार्मिक रूढ़िवाद के विरुद्ध संघर्ष को भी हिंदी की प्रगतिशील कविता ने मुख्य विषय बनाया।

प्रगतिशील कविता भाषा और शिल्प की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। इसे हिंदी में भक्ति काव्य और छायावाद के बाद की सबसे शक्तिशाली और समृद्ध काव्यधारा माना जाता है। प्रगतिशील कविता ने काव्य के विविध कला रूपों को प्रस्तुत किया और भाषा को जनता के नजदीक लाकर उसकी संप्रेषणीयता को भी संपन्न बनाया।

इस प्रकार प्रगतिशील कविता का यह अध्ययन आपको ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में इसे समझने की अंतर्दृष्टि प्रदान करेगां, ऐसी आशा है।

17.10 अभ्यास प्रश्न

1. प्रगतिवाद के उदय के वैचारक और ऐतिहासिक कारणों का विवेचन कीजिए और बताइए कि भारतीय संदर्भ में इनका क्या महत्व है?

2. प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना और अवसान के कारणों का उल्लेख करते हुए इसकी भूमिका का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

3. प्रगतिशील साहित्य परंपरा की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए।

4. प्रगतिशील कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों का सोदाहरण विवेचन कीजिए।

5. आधुनिक हिंदी काव्य परंपरा में प्रगतिवाद के योगदान का प्रकाश डालिए।

इकाई 18 प्रयोगवाद और नयी कविता

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

यह इकाई प्रयोगवाद और नयी कविता पर आधारित है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- प्रयोगवाद और नयी कविता के साहित्यिक आंदोलनों को समझ सकेंगे;
- प्रयोगवाद और नयी कविता के बीच के सूक्ष्म अंतर से भी परिचित हो सकेंगे;
- प्रयोगवाद और नयी कविता विभिन्न विचार धाराओं से प्रभावित हुई है। इस विचारधारा का निर्माण करने वाली परिस्थिति की भी चर्चा कर सकेंगे;
- प्रयोगवाद और नयी कविता की प्रवृत्तिगत विशेषताओं का परिचय दे सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना

आधुनिक हिंदी साहित्य में स्वाधीनता प्राप्ति के आसपास की नई काव्य–चेतना को व्यापक अर्थों और संदर्भों में 'प्रयोगवाद और नयी कविता' के नाम से संबोधित किया गया है। यह काव्य आंदोलन अनेक तरह की विचारधाराओं, जीवन–मूल्यों, सामाजिक–राजनीतिक आघातों के सामाजिक यथार्थ से उत्पन्न हुआ। यह काव्य आंदोलन रचना–प्रक्रियाओं की विभिन्न शैलियों को अपने में अभिन्न रूप से आत्मसात करता हुआ रचनात्मक विकास की अनेक दिशाओं में विकसित होता रहा। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद देश में नव–निर्माण और ब्रिटिश साम्राज्यवाद की दासता की जंजीरों से मुक्त होने का उल्लास था। किंतु इस उल्लास के भीतर एक घनीभूत पीड़ा भी व्याप्त थी कि राजनीतिक स्वतंत्रता के आने पर भी देश सामाजिक–आर्थिक रूप से साम्राज्यवादी चंगुल से मुक्त होगा अथवा नहीं। भारत के सामने जो विश्व था वह द्वितीय विश्व युद्ध की मार से घायल, क्षत–विक्षत, भयावह आकृतियों वाला विश्व था जिस पर शीत युद्ध के बादल घिर रहे थे। इस विश्व से हम अलग न रह सकते थे। हम सभी का अनुभव था कि द्वितीय विश्व युद्ध की भंयकर विभीषिकाओं ने अपने प्रभाव–दबाव से विश्व भर में एक पुराने संसार को नष्ट कर दिया है। हालत यह हो गई कि पुराने मूल्यों और मान्यताओं पर या तो प्रश्न–चिह्न लगा दिया गया या उन्हें इस रूप में बदलाव की तीव्र प्रक्रिया के भीतर से गुजरना पड़ा कि उन्हें मूल रूप में पहचानना कठिन हो गया था।

प्रयोगवाद और नयी कविता, सामान्य और विशिष्ट, दोनों अर्थों में अपने से पहले की कविता से विद्रोह करती कविता है। छायावाद और प्रगतिवाद की बहुत–सी मान्यताएँ और कसौटियाँ या तो अमान्य घोषित कर दी गईं या फिर उन्हें संशोधन और परिष्कार के साथ आत्मसात कर लिया गया। यह परिवर्तन इतनी प्रबल गति से घटित हुआ कि कविता की प्रेरणाभूमि, उपकरण, विचारधारा, कथ्य और अंतर्दृष्टि से लेकर अभिव्यंजना के माध्यमों (भाषा, बिंब, प्रतीक, मिथक, उपमान, भंगिमा, लय, छंद, शैली) में तो आया ही, कविता के उद्देश्य और आधारों में भी एक बड़ी क्रांतिकारी हलचल उपस्थित हुई। कविता का उद्देश्य आनंद या मुग्ध कर लेना मात्र नहीं रहा – कविता का उद्देश्य हो गया आदमी का संपूर्णता में अपने समय और समाज के यथार्थ से साक्षात्कार। नई प्रश्नाकुलताओं और चुनौतियों के कारण परंपरा और आधुनिकता के प्रति रवैया, नया प्रस्तावित हुआ। नई बौद्धिकता का संदर्भ, विचारधारात्मक संघर्ष और प्रतिबद्धता का प्रश्न, राजनीति और धर्म के बदलते रिश्ते, व्यक्ति–स्वातंत्र्य, व्यवस्था–विरोध और अस्वीकार के साहस के रूप में सामने आया।

सन् 1940 से लेकर 1970 तक के तीन दशक भारत के लिए ही नहीं विश्व साहित्य के लिए वैचारिक संघर्ष की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण रहे। संस्कृति, लोकतंत्र और स्वतंत्रता के नाम पर पूँजीवाद–साम्राज्यवाद की विचारधारा ने एक जाल फेंका कि तीसरी दुनिया के देश उनके चंगुल से बाहर रहकर पनप न सकें। नई राजनीति से शीत युद्ध का खतरा पनपने लगा। नयी कविता पर इन खतरों की छाया देखकर नई कविता के सर्वाधिक समर्थ भाष्यकार, विचारक और कवि ग.मा. मुक्तिबोध सकते में आ गए। उन्होंने पूरी स्थिति को समझाते हुए लिखा है – 'स्वाधीनता प्राप्ति के उपरान्त भारत में एक और अवसरवाद की बाढ़ आई। शिक्षित मध्य वर्ग में भी उसकी जोरदार लहरें पैदा हुईं। साहित्यिक लोग भी उसके प्रवाह में बहे और खूब ही बहे। इस भ्रष्टाचार, अवसरवाद, स्वार्थपरता की पार्श्वभूमि में, नयी कविता के क्षेत्र में पुराने प्रगतिवाद पर जोरदार हमले किए गए और कुछ सिद्धांतों की एक रूपरेखा प्रस्तुत की गई। ये सिद्धान्त और उसके हमले, वस्तुतः उस शीत युद्ध के अंग थे जिसकी प्रेरणा लन्दन और वाशिंगटन से ली गई थी। पश्चिम की परिपक्व मानवतावादी परंपरा से साहित्यिक प्रेरणा ग्रहण न करके उन पर नए व्याख्याताओं ने उसकी अत्यंत प्रतिक्रियावादी साहित्यिक विचारधारा को अपनाया और फैलाया। नयी कविता के आसपास लिपटे हुए बहुत से साहित्यिक सिद्धांतों में शीत युद्ध की छाप है।' (नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध)।

'प्रयोगवाद और नयी कविता' में कलावाद या कला की ऑटोनॉमी को, कला के स्वायत्त संसार को इस ढंग से जमाने का प्रयास ही कवि मुक्तबोध की चिन्ता का विषय बना है। कलावादियों को डर लगता था कि वे परिवर्तनकारिणी प्रवृत्तियाँ कहीं नयी कविता में न उभरने लगें। इसलिए ऐसी प्रवृत्तियों की साहित्यिक अभिव्यक्तियों के और अधिक प्रभावशाली एवं सुन्दर ढंग से बनने की अगली संभावनाओं के

विरोध में उन्होंने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसमें कला की स्वायत्त निर्विकल्पकता की स्थापना की गई और इस प्रकार नयी कविता को जीवन के मूल तथ्यों से अलग करने का प्रयत्न किया गया। आधुनिक भावबोध वाले सिद्धान्तों, जन–साधारण के उत्पीड़न के अनुभवों, उग्र विक्षोभों और मूल उद्वेगों का बॉयकाट किया गया। 'लघुमानव' वाला सिद्धान्त लाकर जन–साधारण की मार्मिक आध्यात्मिक शक्तियों और भव्यताओं से आँखें फेर ली गईं।

मुक्तिबोध ने नयी कविता आंदोलन की राजनैतिक व्याख्या तो की ही नयी कविता के सांस्कृतिक–सौंदर्यात्मक, मनोविश्लेषणात्मक और साहित्यिक पहलुओं का विस्तार से अध्ययन भी प्रस्तुत किया। किंतु मुक्तिबोध और उनकी विचारधारा से असहमत नयी कविता के बहुत से कवि आलोचकों ने मार्क्सवाद का खण्डन करते हुए उसे एक प्रकार का अधिनायकवाद कहा जिसमें 'व्यक्ति स्वातंत्र्य' के लिए जगह ही कहाँ है। नयी कविता में नेहरू–युग से मोहभंग की पीड़ा व्यापक स्तर पर व्यक्त हुई। जयप्रकाश नारायण और लोहिया का समाजवादी दर्शन इस दौड़ में जनता की 'आस्था' का पर्याय बना और नई कविता का एक बड़ा कवि समूह लोहियावादी विचारधारा से प्रभावित हुआ। लक्ष्मीकांत वर्मा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, विजयदेव नारायण साही आदि की विचारधारा पर न अमरीकी पूँजीवादी–साम्राज्यवादी विचारधाराओं का असर है न मार्क्सवादी विचारधारा का। गांधी के विचारों का नया संशोधित संस्करण बनकर राममनोहर लोहिया आए और नई कविता का सहज मानव (जिसे विजयदेवनारायण साही और लक्ष्मीकांत वर्मा ने 'लघु मानव' नाम दिया) इसी भाव–बोध की हिंदुस्तानी उपज है। नयी कविता, इसी अर्थ में सहज मानव या सामान्य मानव के व्यापक परिवेश से जन्मी तनाव और संघर्ष की अभिव्यक्ति देने वाली कविता है – जो साधारण आदमी की असाधारणता में विश्वास करती है, महामानवों की छद्म आदर्शवादिता में नहीं। मार्क्सवादी, अस्तित्ववादी, मनोविश्लेषणवादी, अतियथार्थवादी, यथार्थवादी, क्षणवादी जैसी तमाम विचारधाराओं का प्रयोगवाद और नयी कविता पर वस्तु और रूप के स्तर पर प्रभाव है, पर 'प्रयोगवाद और नयी कविता' किसी भी विचारधारा की गुलामी स्वीकार नहीं करती हैं।

18.2 प्रयोगवाद

आधुनिक हिंदी कविता में 'प्रयोगवाद' का जन्म छायावाद की अतिशय अशरीरी कल्पना, सूक्ष्मतावादी सौंदर्य–बोध और एकांगिता के विरोध से हुआ। ऐतिहासिक दृष्टि से 'प्रयोगवाद' का आरम्भ अज्ञेय के सम्पादकत्व में निकलने वाले काव्य संग्रह 'तारसप्तक' से हुआ। 'तारसप्तक' में विविध विचारधाराओं के कवि एक साथ एकत्रित हुए जिनमें अज्ञेय को छोड़कर ज्यादातर कवि प्रगतिशील विचाराधारा के समर्थक थे। किंतु प्रयोगवाद नाम इस काव्य–प्रवृत्ति के विरोधियों द्वारा दिया गया है। 'प्रयोगवाद' के कवियों ने 'प्रगतिवाद' पर दो आरोप साफ तौर पर लगाए – (1) प्रगतिवाद, साहित्य का संकीर्णतावादी आंदोलन है जिसमें रचनाकार की स्वतंत्रता का अपहरण किया जाता है; और (2) प्रगतिवाद, विषय–वस्तु पर अत्यधिक बल देकर विचारधारा की नारेबाजी का फार्मूला अपनाता है। इसमें साहित्य की कलात्मकता और रूप–विधान की भयंकर उपेक्षा होती है। अज्ञेय ने 'प्रगतिवाद' से असंतुष्ट होकर 'व्यक्ति स्वातंत्र्य सिद्धान्त' की स्थापना का अभियान 'प्रयोगवाद' में चलाया। प्रगतिशील साहित्य में साहित्येतर मूल्यों को स्थान मिला था – किंतु 'प्रयोगवाद' साहित्यिक मूल्यों को केन्द्र में रखकर आगे बढ़ा। फलतः 'प्रयोगवाद' के अतिवाद से बचने के चक्कर में 'प्रयोगवाद' स्वयं अपने ही अंतर्विरोधों–अतिवादों का शिकार होकर रूपवाद (फार्मलिज्म) के जाल में फंसता गया जिससे उसे मुक्ति नयी कविता आंदोलन में मिली।

इसी समय काव्य में 'प्रयोग' को आधार बनाकर एक आंदोलन नकेनवादियों या प्रपद्यवादियों ने खड़ा कर दिया। 'प्रयोग' शब्द अंग्रेजी के 'एक्सपेरीमेण्ट' का हिंदी पर्याय है और इसका संबंध विज्ञान के 'प्रयोग' से न होकर आधुनिक चित्रकला के 'प्रयोग' से है। आधुनिक चित्रकला के प्रवर्तक चित्रकार सेजा ने अपने चित्रों को 'प्रयोग' कहा – फिर क्या था कि चित्रकला से यह 'प्रयोग' शब्द साहित्य में आया और चल पड़ा। अन्यथा 'प्रयोग' या 'प्रयोगवाद' का 'एक्सपेरीमेन्टलिज्म' जैसा कोई समानांतर आधार पश्चिम में भी नहीं है। नकेनवादियों ने 'प्रयोग' को काव्य में साध्य और साधन, दोनों घोषित किया। लेकिन 'प्रयोगवाद' के काफी पीछे 'नकेनवाद' आंदोलन चला। नकेनवादी काव्य "प्रपद्यद्वादश–सूत्री" तथा "फक्किका" के साथ छपकर आया और अंत में "पस्पशा" के अंतर्गत "प्रयोगवाद" का वास्तविक आरंभ नलिन जी की

कविताओं से घोषित किया गया। इसमें "प्रयोग दश सूत्री" देकर अज्ञेय जी के विचारों की खुली आलोचना की गई तथा "दो सूत्र" कहते हैं कि (1) "प्रयोगवाद सर्वतंत्र स्वतंत्र है; (2) उसके लिए शास्त्र या बल निर्धारण नियम अनुपयुक्त है।" लेकिन बिहार की भूमि से उठा यह काव्य–आंदोलन शेष हिंदी क्षेत्रों में मान्यता प्राप्त नहीं कर सका। नकेनवाद का 'भाव और व्यंजना स्थापत्य' तथा "प्रपद्यवाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि" को ये रचनाकार स्वयं स्पष्ट नहीं कर सके। नतीजा यह हुआ कि काव्य–आंदोलन एकदम किनारे पड़कर विलुप्त हो गया।

"प्रयोगवाद" के प्रवर्तन का सच्चा श्रेय अज्ञेय जी को ही मिला और इस कविता के स्वरूप को जानने के लिए "तारसप्तक" (1943) 'दूसरा सप्तक" (1951) और "तीसरा सप्तक" (1959) को आधार बनाया जाता है। अज्ञेय ने "चौथा सप्तक" भी निकाला पर इसे "उपेक्षित" कहकर नकार दिया गया। सम्पादक ने न केवल इक्कीस कवियों को एकत्र किया बल्कि हर कवि ने अपने काव्य पर "वक्तव्य" भी दिए। सच है कि "तारसप्तक" के सात कवि हैं – गजानन माधव मुक्तिबोध, नैमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजा कुमार माथुर, राम विलास शर्मा और अज्ञेय। संकलनकर्ता और संपादक अज्ञेय को "तारसप्तक" से सम्मान और विवाद मिला। "तारसप्तक" की भूमिका की वे स्थापनाएँ जो विवाद के केन्द्र में रही हैं, इस प्रकार हैं :

1. "विविध नई प्रवृत्तियों को संकेतित किया... कवि का युग... संबंध सदा के लिए बदल गया था। सभी कवि अपने को अपने समय से एक नए ढंग से बाँध रहे थे।"

2. "कुछ के लिए आधुनिकधर्मा होने के आग्रह पहले थे और अपनी मानवधर्मिता को यह आधुनिकता से अलग नहीं देख सकते थे।"

3. "सृजनशील प्रतिभा का धर्म है कि वह व्यक्तित्व ओढ़ती है। सृष्टियाँ जितनी भिन्न होती हैं सृष्टा उससे कुछ कम विशिष्ट नहीं होते, बल्कि उनके व्यक्तित्व की विशिष्टताएँ ही उनकी रचना में प्रतिबिंबित होती हैं।"

4. "शिल्पाश्रयी काव्य पर रीति हावी हो सकती है, वैसे ही मताग्रही पर भी रीति हावी हो सकती है। "सप्तक" के कवियों के साथ ऐसा नहीं हुआ।"

5. "अब भी उनके बारे में उतनी ही सच्चाई के साथ कहा जा सकता है कि उनमें मतैक्य नहीं है, सभी महत्वपूर्ण विषयों पर उनकी राय अलग–अलग है – जीवन के विषय में, समाज धर्म और राजनीति के विषय में, काव्य–वस्तु और शैली के, छंद और तुक के, कवि के दायित्वों के – प्रत्येक विषय में उनका आपस में मतभेद है।"

6. "दूसरा मूल सिद्धान्त यह था कि संगृहीत सभी कवि ऐसे होंगे जो कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं – जो यह दावा नहीं करते कि काव्य का सत्य उन्होंने पा लिया है – केवल अन्वेषी ही अपने को मानते हैं।"

7. "तारसप्तक" में सात कवि संगृहीत हैं। सातों एक–दूसरे से परिचित हैं – बिना इसके इस ढंग का सहयोग कैसे होता किंतु इससे यह परिणाम न निकाला जाए कि वे कविता के किसी एक "स्कूल" के कवि हैं। या कि साहित्य जगत के किसी गुट अथवा दल के सदस्य या समर्थक हैं।"

8. "ऐसा होते हुए भी वे एकत्र संगृहीत हैं, इसका कारण... **काव्य के प्रति एक अन्वेषी का दृष्टिकोण उन्हें समानता के सूत्र में बाँधता है।"**

9. "इसका यह अभिप्राय नहीं है कि प्रस्तुत संग्रह की सब रचनाएँ रूढ़ि से अछूती हैं या कि केवल यही कवि प्रयोगशील हैं, बाकी सब घास छीलने वाले, वैसा दावा यहाँ कदापि नहीं, दावा केवल इतना है कि ये सातों अन्वेषी हैं।"

10. "तारसप्तक की कविता वैसी जड़ाऊ नहीं है वह वैसी हो भी नहीं सकती।"

इतिहास साक्षी है कि "तारसप्तक" की इन स्थापनाओं पर बड़ा विवाद हुआ। नतीजा यह हुआ कि अज्ञेय ने "दूसरा सप्तक" में (भूमिका) पुनः अपनी बात की सफाई देते हुए कहाः

1. "क्या ये रचनाएँ प्रयोगवादी हैं क्या ये कवि किसी एक दल के हैं, किसी मतवाद–राजनीतिक या साहित्यिक के पोषक हैं। "प्रयोगवाद" नाम के नए मतवाद के प्रवर्तन का दायित्व क्योंकि अनचाहे और अकारण ही हमारे मत्थे मढ़ दिया गया है।"

2. "प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, नहीं हैं। न प्रयोग अपने आप में इष्ट या साध्य है। ठीक इसी तरह कविता का कोई वाद नहीं है, कविता भी अपने आप इष्ट या साध्य नहीं है। अतः हमें "प्रयोगवादी" कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना हमें "कवितावादी" कहना।"

3. "जिस प्रकार कविता रूपी माध्यम को बरतते हुए आत्माभिव्यक्ति चाहने वाले कवि को यह अधिकार है कि उस माध्यम का अपनी आवश्यकता के अनुरूप श्रेष्ठ उपयोग करे, उसी प्रकार आत्म–सत्य के अन्वेषी कवि को अन्वेषण के प्रयोग–रूपी माध्यम का उपयोग करते समय उस माध्यम की विशेषताओं को भी परखने का अधिकार है।"

4. "जो लोग प्रयोग की निन्दा करने के लिए परम्परा की दुहाई देते हैं, वे भूल जाते हैं कि परम्परा कम से कम कवि के लिए ऐसी कोई पोटली बाँधकर अलग रखी हुई चीज नहीं है जिसे वह उठाकर सिर पर लाद ले और चल निकले। (कुछ आलोचकों के लिए भले ही वैसा हो) परम्परा का कवि के लिए कोई अर्थ नहीं है जब तक वह उसे ठोक बजाकर, तोड़–मरोड़कर देखकर आत्मसात् नहीं कर लेता, जब तक वह एक इतना गहरा संस्कार नहीं बन जाती कि उसका चेष्टापूर्वक ध्यान कर उसका निर्वाह करना अनावश्यक न हो जाए। अगर वह कवि की आत्माभिव्यक्ति एक संस्कार विशेष के वेष्टन में ही सामने आती है, तभी वह संस्कार देने वाली परम्परा, कवि की परम्परा है, नहीं तो वह इतिहास है, शास्त्र है, ज्ञान भण्डार है जिससे अपरिचित भी रहा नहीं जा सकता है।"

5. "प्रयोग अपने आप में इष्ट नहीं है वह साधन है। और दोहरा साधन है। क्योंकि एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे वह उस प्रेषण की क्रिया को और उसके साधनों को जानने का भी साधन है।... वस्तु और शिल्प दोनों के क्षेत्र में प्रयोग फलप्रद होता है।"

6. "प्रयोग का हमारा कोई वाद नहीं है, इसको और भी स्पष्ट करने के लिए एक बात हम और कहें। प्रयोग निरंतर होते आए हैं और प्रयोगों के द्वारा ही कविता या कोई कला, कोई भी रचनात्मक कार्य आगे बढ़ सका है। जो यह कहता है कि मैंने जीवन भर कोई प्रयोग नहीं किया वह वास्तव में, यही कहना चाहता है कि मैंने जीवन–भर कोई रचनात्मक कार्य नहीं करना चाहा।"

7. "केवल प्रयोगशीलता ही किसी रचना को काव्य नहीं बना देती। हमारे प्रयोग का पाठक या सहृदय के लिए कोई महत्त्व नहीं है, महत्त्व उस सत्य का है जो प्रयोग द्वारा हमें प्राप्त हो।"

8. श्री नंददुलारे बाजपेयी का "प्रयोगवादी रचनाएँ" शीर्षक निबंध तर्क विकृति का आश्चर्यजनक उदाहरण है।

9. "तारसप्तक" के कवियों पर यह आक्षेप किया जाता है कि साधारणीकरण का सिद्धान्त नहीं मानते। यह दोहरा अन्याय है। क्योंकि वे न केवल इस सिद्धान्त को मानते हैं, बल्कि इसी से प्रयोगों की आवश्यकता भी सिद्ध करते हैं। यह मानना होगा कि सभ्यता के विकास के साथ–साथ हमारी अनुभूतियों का क्षेत्र भी विकसित होता गया है और अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए हमारे उपकरण भी विकसित होते गए हैं। यह कहा जा सकता है कि हमारे मूल राग–विराग नहीं बदले – प्रेम अब भी प्रेम है, घृणा.., अब भी घृणा पर यह ध्यान में रखना होगा कि राग वही रहने पर भी

रागात्मक संबंधों की प्रणालियाँ बदल गई हैं और कवि का क्षेत्र रागात्मक संबंधों का क्षेत्र होने के कारण इस परिवर्तन का कवि कर्म पर बहुत गहरा असर पड़ा है।''

10. ''जैसे–जैसे बाह्य वास्तविकता बदलती है वैसे–वैसे हमारे उससे रागात्मक संबंध जोड़ने की प्रणालियाँ भी बदलती हैं और अगर नहीं बदलती हैं तो उस बाह्य वास्तविकता से हमारा संबंध टूट जाता है।''

इस प्रकार, अज्ञेय के द्वारा ऊपर दिए गए सैद्धान्तिक वक्तव्य ही ''प्रयोगवाद'' के विचार केंद्र को आलोकित करते रहे। गिरिजाकुमार माथुर को छोड़कर ''तारसप्तक'' के सभी कवि साम्यवादी विचारधारा की ओर झुके रहे। मुक्तिबोध–''पूँजीवाद समाज के प्रति'', नेमिचन्द्र जैन–''कवि गाता है'', भारत भूषण अग्रवाल–''अपने कवि से'' एवं ''जागते रहो'', प्रभाकर माचवे–''निम्न मध्य वर्ग'' और ''बीसवीं सदी'', डा. रामविलास शर्मा–''विश्व शांति'' शीर्षक कविताओं का स्वर स्पष्ट रूप से साम्यवादी विचारों से प्रेरित है। स्वयं अज्ञेय, जिन पर फ्रायड का गहरा प्रभाव था – ''जनसड़ान'' कविता में ''लाल आग मेरे भावी गौरव का पथ है'' कहते मिलते हैं। इसलिए हिंदी आलोचकों का एक वर्ग–जगदीश गुप्त आदि – मानते हैं कि ''प्रयोगवाद'' का जन्म ''प्रगतिवाद'' की कोख से हुआ। लेकिन प्रगतिवादियों का मत है कि ''प्रयोगवाद'' का आंदोलन ''प्रगतिवाद'' की जन–चेतना के नाश के लिए सुनियोजित तरीके से चलाया गया। स्वयं डा. रामविलास शर्मा इसी मत की पुष्टि करते हैं। ''राही नहीं राहों के अन्वेषी'' का नारा अज्ञेय ने सभी को सत्य से भटकाने के लिए दिया था – ताकि वे आभिजात्यवादी–पूँजीवादी मूल्यों की रक्षा कर सकें। इतना ही नहीं, व्यक्ति स्वातंत्र्य के नाम पर अज्ञेय ने व्यक्तिवाद का पोषण किया और ''कला कला के लिए'' सिद्धान्त के बीज बोए। प्रयोगवाद की मूल प्रवृत्तियाँ टटोलकर पाया कि (1) विचारधारा से मुक्ति (2) सत्य के अन्वेषण की झोंक (3) व्यक्तिवाद (4) बौद्धिकता का झूठा मुखौटा (5) परम्परा की ऐतिहासिक चेतना (6) प्रयोग का आग्रह (7) चमत्कारी शिल्प में जड़ाऊ रूपवाद (8) काव्य–भाषा और सम्प्रेषण (9) नए बिम्ब और जटिल प्रतीक (10) छंद और लय जीवन के भीतर से पकड़ (11) लोक लयों का उपयोग – वे सभी विशेषताएँ कविता के साहित्यिक मूल्यों तक सीमित हैं। मूलतः प्रयोगवादी काव्य–शिल्प की चमक–दमक का आंदोलन है जिस पर मनोविश्लेषणवाद, बिंबवाद, डी.एच. लारेन्स, टी.एस. एलियट आदि का प्रभाव है।

18.3 प्रयोगवाद से नयी कविता के संबंध की पहचान

नयी कविता आंदोलन का ''प्रयोगवाद'' से निकट का रिश्ता है किंतु नयी कविता को प्रयोगवाद का पर्याय मानना गलत है। बहुत से लोग नयी कविता की शुरुआत 1943 ई. में अज्ञेय के सम्पादकत्व में निकलने वाले ''तारसप्तक'' से मानते हैं। ऐसे भी विद्वान हैं जो ''नयी कविता'' का आरंभ सुमित्रानन्दन पन्त और उनके ''रूपाभ'' (1938) से जोड़ते हैं और कुछेक सूर्यकान्त त्रिपाठी ''निराला'' के काव्य ''कुकुरमुत्ता'' (1942) के नवीन काव्य–बीजों में नई कविता के बीज खोजते हैं। यह भी कहा जाता है कि ''सन् 1942–43 में पन्त, नरेन्द्र, केदार, शमशेर कविता की जिस धारा के कवि हैं, ''तारसप्तक'' उसमें प्रवाह की एक लहर है, नदी का स्थिर द्वीप नहीं।'' (डॉ. रामविलास शर्मा, नई कविता और अस्तित्ववाद, पृ.17) शायद नयी कविता पचास वर्षों में सर्वाधिक विवादास्पद और विचारोत्तेजक साबित हुई है। कविता संबंधी चिंतन के अधिकांश विवाद के केन्द्र में किसी न किसी रूप में ''तारसप्तक'' ही है वर्षों तक ''तारसप्तक'' के ''प्रयोग'' और ''अन्वेषण'' पर करारी बहसें हुई, जिसका इस्तेमाल अज्ञेय ने भूमिका में किया था। प्रयोग से ''प्रयोगवाद'' नाम चलाया गया और इस नाम पर तूफान खड़ा हो गया। अज्ञेय ने बार–बार कहा कि प्रयोग का कोई वाद नहीं है, हम वादी नहीं हैं, पर पुराने आचार्य भला कब मानने वाले थे। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने इन प्रयोगशील कवियों को ''प्रयोगवादी'' कहा और इनका घोर विरोध किया, पर विरोध से अज्ञेय कब डरने वाले थे – अज्ञेय ने ''दूसरा सप्तक'' की भूमिका में आचार्यश्री के आक्षेपों का उत्तर दिया और पूरी काव्य–स्थिति को नए वैचारिक कोणों से स्पष्ट किया। वस्तुतः आगे चलकर प्रयोगवाद और प्रगतिवाद जिस नए काव्य–आंदोलन में घुल–मिल गए – ''वह नयी कविता'' है। और महीन–भेद उभरने पर दो तरह की ''नयी कविता'' हो गई – आधुनिकतावादी

नयी कविता – प्रवर्तक अज्ञेय, दूसरी साम्यवादी–जनवादी–प्रगतिशील नयी कविता – प्रवर्तक गजानन माधव मुक्तिबोध।

शक और हिकारत की नज़र से देखे जाने पर भी छायावादोत्तर हिंदी कविता में "बौद्धिकता" की महत्त्व–प्रतिष्ठा "तारसप्तक" ने की। इन कवियों ने छायावाद के कल्पनाप्रवण, अमूर्त भाव–पद्धति–प्रधान, सूक्ष्मतावादी मनोवृत्ति, वायवीपन, रूढ़ होती पदावली को छोड़ने का जोखिम उठाया। प्रगतिवाद की स्थूल सतही एकांगी कविता पर प्रहार किया। बौद्धिकता की उठान से युक्त नई राह को खोजने की कोशिश "प्रयोगवाद" में पूरे जोर से की गई। हालाँकि नई राहें खोजने की तैयारी करने पर भी ये कवि एक सीमा से आगे नई राहें खोज नहीं पाए – यह अलग बात है। शानदार असफलता भी सफलता से कम कीमती चीज नहीं है – यह बात "प्रयोगवाद" ने सिद्ध करके दिखा दी। "तारसप्तक" के कवियों का बौद्धिक आचरण और काव्य–स्वभाव पहले की कविता से निश्चय ही भिन्न साबित हुआ। इसी दृश्य को समझते हुए नई कविता के आलोचक डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी को कहना पड़ा कि हिंदी में आधुनिकता की शुरुआत होती है – "तारसप्तक" से और हिंदी के पहले आधुनिक कवि का नाम है – अज्ञेय। (हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ.226) "तारसप्तक" के प्रकाशन से हिंदी साहित्य में आधुनिक संवेदना का सूत्रपात माना जाता है। स्वाधीन पश्चिम और साम्यवादी रूस दोनों की विचारधाराएँ हिंदी साहित्य से सजग रूप में नियोजित आधुनिक काव्यांदोलन में परस्पर टकराती हैं – जिनके बीच ये सात कवि अपने निजी व्यक्तित्व की तलाश में गतिशील दिखते हैं। इस दृष्टि से "तारसप्तक" की भूमिका में उन्हें "राहों के अन्वेषी" ठीक ही कहा गया है।" वैचारिक मतभेदों के होने पर भी "प्रयोग" का तत्व उन्हें एकसूत्रता में बाँध लेता है। इतना ही नहीं, विचारधारा के आग्रह से मुक्त इन कवियों की रचनात्मक संवेदनशीलता दूर तक इन्हें निर्मित करती है। प्रगतिवाद–प्रयोगवाद और नयी कविता के दौर घुल–मिलकर एक नया रचना–परिदृश्य उपस्थित कर देते हैं। इसलिए यह कहना ऐतिहासिक भूल है कि प्रयोगवाद का जन्म "प्रगतिवाद" की हत्या के लिए हुआ था।

वास्तविकता यह है कि "प्रयोगवाद" मानव जीवन के आंतरिक यथार्थ पर बल देने के कारण फ्रायड और जुंग की खोजों या स्थापनाओं की ओर प्रवृत्त हो गया। प्रगतिवादी काव्य ने यदि शोषित एवं बुभुक्षित के आक्रोश और असंतोष को अभिव्यक्ति दी तो "प्रयोगवाद" ने आधुनिक शिक्षा से सम्पन्न युवकों की अनास्था–यंत्रणा और संदेह की मनोदशाओं को व्यक्त किया। इसलिए प्रयोगवाद मानव–मन की निजी समस्याओं–चिंताओं का काव्य था। हिंदी कविता के विकास के सामने जो प्रश्न उपस्थित किए थे, प्रयोगवाद उन्हीं प्रश्नों के दायित्व को लेकर सामने आया था।" (डॉ. केदारनाथ सिंह, आधुनिक हिंदी कविता में बिंब–विधान, पृ० 297) सच बात तो यह है कि ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र का आधार "प्रयोग" पर टिका है, पर साहित्य के क्षेत्र में "प्रयोग" (एक्सपेरीमेण्ट) शब्द विज्ञान के क्षेत्र से न आकर "चित्रकला" के क्षेत्र से आया। यही स्थिति "अन्वेषण" शब्द की है। ये दोनों शब्द यूरोपीय चित्रकला में प्रसिद्ध होने के बाद साहित्य में आए। आधुनिक कला के प्रवर्तक कलाकार सेजाँ ने "रिसर्च" शब्द का प्रयोग किया और वह चल निकला। सम्प्रेषणीयता की समस्या चित्रकला में भी थी और साहित्य में भी। इस दृष्टि से भी "अन्वेषण" प्रयोगवाद की मनोभूमिका में प्रवेश करता गया। आधुनिक अंग्रेजी कविता में टी.एस. इलियट और एजरा पाउण्ड "एण्टी–रोमांटिक" उठान लेकर आए। यहाँ तक कि पूरा "न्यू क्रिटिसिज्म" या नयी समीक्षा का आंदोलन रोमाण्टिक काव्य–मूल्यों के निषेध की पुकार लगाता आया। कुछ–कुछ ऐसी ही स्थिति हिंदी काव्य में भी दिखाई देती है – पूरा प्रयोगवाद और नयी कविता आंदोलन रोमाण्टिक मूल्यों के निषेध पर बल देता है। "तारसप्तक" के वक्तव्य अपनी गहराई में बिंबवादी ह्यूम, एजरा पाउण्ड और टी.एस. इलियट के काव्य–सिद्धान्तों की ध्वनियाँ लिये हुए दिखाई देते हैं।

प्रश्न उठता है कि प्रयोगवाद में "राहों के अन्वेषण" का क्या अर्थ है? इसका संभव उत्तर यही है कि कठिन होते कवि–कर्म की समस्या से जूझते हुए "संप्रेषणीयता" के मार्गों का अन्वेषण। अन्वेषण यह, कि राह शब्दों–बिंबों–प्रतीकों–लयों के बोध से निकाली जा सकती थी। इसीलिए ये सभी कवि शिल्प या रूप–विधान की ओर बढ़ते गए। इन कवियों की प्रयोगात्मक वृत्ति ने उन तमाम रूढ़ियों के विरूद्ध संघर्ष किया जो आधुनिक जीवन की गहन जटिल मनःस्थितियों–अनुभूतियों को मूर्त करने में बाधक हो रही थीं। शिल्प पर ज्यादा बल देने के कारण ही प्रयोगवाद को रूपवादी (फार्मलिस्ट) कहा जाता है। पर नयी कविता ने प्रयोगवाद के इस रूपवादी–चमत्कारवादी मोह से विद्रोह किया है। इसी दृष्टि से प्रयोगवाद तथा नयी कविता पर्याय नहीं हैं – दो भिन्न दृष्टि के काव्य–आंदोलन हैं।

18.3.1 नयी कविता के नामकरण के नए अर्थ वृत्त

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर यह तथ्य साफ उभर कर सामने आ जाता है कि सन् 1950 तक प्रयोग की एकान्तिक वृत्ति के प्रति आकर्षण कम हो गया। कविता अब चमत्कारवादी–रूपवादी रूढ़ियों के बंधनों को तोड़कर पूरे जीवन को सामने लाने का संघर्ष करने लगी तो उसके लिए एक नए नाम की जरूरत महसूस की गई। सर्वप्रथम अज्ञेय जी ने इस काव्य–प्रवृति को "नयी कविता" नाम (आज का भारतीय साहित्य, पृ. 403) देने का प्रस्ताव किया। संयोगवश यह नाम चल निकला और नई प्रवृत्तियों के लिए रूढ़ हो गया।

इलाहाबाद से 1954 में "नयी कविता" पत्रिका आरंभ हुई। "नयी कविता" के प्रकाशन से यह नाम चर्चित होकर पूरे प्रवाह में आ गया। इलाहाबाद के नए रचनाकार और आलोचक धर्मवीर भारती, रघुवंश तथा विजयदेव नारायण साही "आलोचना" त्रैमासिक के सम्पादकत्व मण्डल में थे– एक विचार–गोष्ठी में इन सभी ने नई सर्जनात्मक संवेदना पर पाठकों का ध्यान केंद्रित करने के लिए "नयी कविता" पत्रिका निकालने का निर्णय लिया। सम्पादन का दायित्व जगदीश गुप्त (नयी कविता आंदोलन के कवि आलोचक) तथा डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी (नए साहित्य – नव लेखन के प्रख्यात आलोचक) को सौंपा गया। इलाहाबाद में "नयी कविता" पर गरमागरम बहसें हो रही थीं। अतः एक काव्य–आंदोलन के रूप में "नयी कविता" का प्रकाशन स्वाभाविक ही था। "नयी कविता" के सन् 1954 से 1967 तक आठ अंक प्रकाशित हुए जिनमें लक्ष्मीकांत वर्मा, सर्वेश्वर, कुँवर नारायण, विपिन कुमार अग्रवाल, श्रीराम वर्मा आदि की कविताएँ तथा अज्ञेय, रघुवंश, विजयदेवनारायण साही, जगदीश गुप्त, रामस्वरूप चतुर्वेदी जैसे काव्य–मर्मज्ञों की टिप्पणियाँ और लेख प्रकाशित हुए। भारती की "कनुप्रिया" तथा "अंधायुग" जैसी रचनाओं के अंश भी "नयी कविता" में प्रकाशित हुए तथा आधुनिक संवेदना की अभिव्यक्ति में प्राचीन पौराणिक मिथकों–आख्यानों के सफल–सार्थक प्रयोग की संभावनाओं पर भरोसा किया गया। पत्रिका के "संचयन स्तम्भ" में अनेक परिचित अपरिचित नए रचनाकर छापे गए – बहुत सी नई प्रतिभाएँ "नयी कविता" पत्रिका से प्रकाश में आईं। "नयी कविता" पत्रिका के कुछ लेख "लघु मानव के बहाने हिंदी कविता पर एक बहस" (साही जी), "अर्थ की लय" तथा "रसानुभूति और सह–अनुभूति" बहुत प्रसिद्ध हुए। इनमें "बिंब–विधान", "आधुनिकता", "विचारधारा" पर करारी बहसें हुई। प्रभाकर माचवे ने "भारतीय भाषाओं में नयी कविता : कुछ नोट्स" "नयी कविता" के अंकों में लिखे। इन सबसे "नयी कविता" पर विचार–चिंतन का वातावरण बना।

सन् 1953 में नए लेखकों की संस्था "परिमल" ने "नयी कविता" पर विचार–गोष्ठियों का आयोजन किया। भारतभूषण अग्रवाल, जगदीश गुप्त तथा रामस्वरूप चतुर्वेदी ने "नयी कविता" पर पर्चे पढ़े। शमशेर की लम्बी कविता "अमन का राग" पढ़ी गई तो पाठकों में व्यापक प्रतिक्रिया हुई। "नए पत्ते", "निकष", "प्रतिमान" जैसी पत्रिकाएँ "परिमल" वृत्त के लेखकों ने निकाली। "परिमल" की गोष्ठियों के संयोजन का कार्य लक्ष्मीकांत वर्मा, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, हरदेव बाहरी तथा हरिमोहन दास टंडन ने किया। "प्रतिमान" पत्रिका विज्ञापित हुई पर प्रकाशित नहीं हो पाई। फलतः डॉ. रघुवंश ने "क ख ग" त्रैमासिक का प्रकाशन किया, जिसके पन्द्रह अंक निकले और नए साहित्य को इस लघु पत्रिका ने अनेक नए पाठक दिए। "परिमल" नाम में निराला के प्रति नमन और आकर्षण दोनों थे। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है, "निराला इन नए लेखकों के मन में कैसे बसे थे – इसका रोचक साक्ष्य इस तथ्य से मिलता है कि उनकी गोष्ठी का नामकरण कवि के आरंभिक संकलन के आधार पर "परिमल" हुआ।... "नयी कविता" नाम अज्ञेय का ही दिया हुआ है।" (हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ. 276) इस रचनात्मक माहौल से "नयी कविता" शब्द का अर्थ व्यापक से व्यापकतर होता गया और इस रचना–युग को "नयी कविता युग", "नवलेखन युग" नाम भी सुझाया गया। कविता केन्द्र में तो रही पर नयी समीक्षा तथा नए सृजन में (नाटक–उपन्यास–कहानी) सभी गद्य–रूप नए रूपों में अभिव्यक्त हुए।

"नयी कविता" आंदोलन को प्रतिष्ठित करने में अज्ञेय की भूमिका अविस्मरणीय है। सन् 1951 में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय ने "दूसरा सप्तक" निकाला। "दूसरा सप्तक" नयी कविता का बेजोड़ दस्तावेज है। इसमें भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्त माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय तथा धर्मवीर भारती मौजूद हैं। "तीसरा सप्तक" (1959) इसी नयी कविता चेतना का विस्तार कहा जा सकता है जिसमें प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, कुँवर नारायण, विजयदेवनारायण साही, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना को स्थान मिला है।

''तीसरा सप्तक'' के अन्तिम चार कवियों ने नयी कविता को हर दृष्टि से सम्पन्न बनाया लेकिन आरंभ के तीन कवि अपने कृतित्व में निरंतर पिछड़ते गए और नाममात्र शेष रह गए। लेकिन नयी कविता आंदोलन सप्तकों तक सीमित नहीं रहा – इसमें अनेक उल्लेखनीय कवि स्वतंत्र रूप से आए। यहाँ इन सभी कवियों की सूची प्रस्तुत करना न तो संभव है और न उचित ही। कुछ उल्लेखनीय कवियों के नाम इस प्रकार हैं – लक्ष्मीकांत वर्मा, जगदीश गुप्त, वीरेन्द्र कुमार जैन, श्रीकांत वर्मा, विपिन कुमार अग्रवाल, अजित कुमार, रामदरश मिश्र, श्रीराम वर्मा, बालकृष्ण राव, दुष्यंत कुमार, कैलाश वाजपेयी, शिवचन्द्र शर्मा, अशोक वाजपेयी आदि। ऐसा भी नहीं है कि नयी कविता आंदोलन केवल छोटी और लम्बी कविताओं के भीतर ही पनंपता रहा है – उसने प्रबंध काव्य के क्षेत्र में भी पहल की। नयी प्रबंध–चेतना की दृष्टि से ''चिन्ता'' (अज्ञेय), ''अंधायुग'', ''कनुप्रिया'' (धर्मवीर भारती), ''आत्मजयी'' (कुँवर नारायण), ''एक कंठ विषपायी'' (दुष्यंत कुमार), ''चित्रकूट चरित'' (लक्ष्मीकांत वर्मा) उल्लेखनीय हैं। नयी कविता युग में पनपने वाली मूल्यांधता, मोहभंग की स्थिति को इस प्रबंध चेतना ने विस्तार से प्रस्तुत किया और इस युग की पूरी मनोभूमिका (यंत्रणा–संत्रास–अनास्था) को नए बिंबों–प्रतीकों में अभिव्यक्ति दी।

नयी कविता आंदोलन की विशिष्टताओं, विविध रूपों, विचारों तथा प्रवृत्तियों का विस्तार से विवेचन–विश्लेषण करने वाली पत्रिकाओं पर भी हमारा ध्यान जाता है। उनमें ''नयी धारा'', ''भारती'', ''लहर'', ''प्रतीक'', ''नया प्रतीक'', ''ज्ञानोदय'', ''नया खून'', ''कल्पना'', ''माध्यम'', ''आधार'', ''उत्कर्ष'', ''कृति'', ''क ख ग'', ''निकष'', ''कृति परिचय'', ''युयुत्सा'', ''अर्थ'', ''संज्ञा'', ''आलोचना'', ''धर्मयुग'' आदि का स्मरण हो आना स्वाभाविक है। यहाँ तक कि लगभग प्रत्येक रेडियो केन्द्र से किसी न किसी रूप में नयी कविता पर वार्तामालाएँ अथवा परिसंवाद प्रसारित किए गए। शायद छायावादी कविता के आरंभिक युग के बाद से कविता को इतना महत्त्व कभी नहीं मिला। यह संयोग नहीं है कि अज्ञेय–मुक्तिबोध–गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती, साही, शमशेर और रघुवीर सहाय के विचार केन्द्र में ''नयी कविता'' ही रही है। इसका कारण है अपने युग की पूरी मनोभूमिका को नयी कविता ने नए काव्यात्मक मुहावरे में सर्वाधिक सशक्त अभिव्यक्ति दी। नयी कविता में जो तनाव–घिराव, हर्ष–विषाद, द्वन्द्व और विरोधाभास है– वह अपने ''परिवेश'' की सीधी आवाज की उपज है। फलतः नयी कविता के विचारों–मूल्यों–मानदण्डों, उसकी विषय–वस्तु और रूप से पाठक सहमत हो या असहमत पर उस पर सोचने के लिए विवश है। आधुनिक संवेदना के अपार विस्तार और केन्द्र में मौजूद मानव, समस्याओं–चिंताओं–प्रश्नाकुलताओं और यंत्रणाओं के बारे में नयी कविता नए तर्क पैदा करती है। ऐसी स्थिति के कारण ''नयी कविता'' को न तो शास्त्रीय ढंग से परिभाषित किया जा सकता है न विश्लेषित। हालाँकि नयी कविता का शास्त्र लक्ष्मीकांत वर्मा ने ''नयी कविता के प्रतिमान'', ''नए प्रतिमान पुराने निकष'', डॉ. नामवर सिंह ने ''कविता के नए प्रतिमान'', गिरिजा कुमार माथुर ने ''नयी कविता : सीमाएँ और संभावनाएँ'' लिखकर बनाने की कोशिश की। पर हुआ क्या? कोई भी कवि–आलोचक या आलोचक उसके विस्तार को न तो बाँध सका न उसकी गहराई ही बता सका। केवल व्यापक संकेतों से ही नयी कविता के विस्तार को समझा जा सकता है।

18.3.2 भाव-बोध

प्रयोगवाद और नयी कविता के लगभग सभी कवियों के प्रेरणा केन्द्र सूर्यकांत त्रिपाठी निराला रहे हैं। अज्ञेय ''तारसप्तक'' की प्रति निराला के पास भेजते हैं – निराला जी तत्काल ''तारसप्तक'' के सहयोगी कवि रामविलास शर्मा को पत्र लिखते हैं, – ''कल 'तारसप्तक' संग्रह मिला। अच्छा निकला है। ...... इन रचनाओं का रूप मेरी दृष्टि से निखर रहा है।'' निराला की प्रसन्नता के अनेक अर्थ किए जा सकते हैं। प्रगति–प्रयोग से फूटती ''आधुनिक संवेदना'' की धारा में कहीं न कहीं निराला अपनी विजय देखते हैं – अपनी प्रयोगशीलता की विजय। प्रयोगवाद और नयी कविता के भाव–बोध को हम इतिहास की इस प्रक्रिया में समझ सकते हैं कि आधुनिक चिंतन में निरंतर बदलता हुआ मनुष्य और समग्र मनुष्य की अवधारणा ही सारे उपक्रम का आधार है। द्वितीय विश्व–युद्धोत्तर संसार की केन्द्रीय चिंता रही है – मानवीय मूल्यों का विघटन और अनास्था–यंत्रणा–पीड़ा की असहनीय स्थितियों से साक्षात्कार। यह तीखा अहसास कि मूल्यों की सर्जनात्मकता के आधार जैसे टूट–फूटकर ''वेस्टलैण्ड में बिखर गए हैं – बाँझ ऊसर का निपट अकेलापन। इस स्थिति को लाने में साम्राज्यवादी और विज्ञान की प्रविधि ने भूमिका अदा की है – धर्म, परिवार, नैतिकता, परम्परागत मूल्य सभी को विज्ञान ने लील लिया है। फिर महाशक्तियों ने शीत–युद्ध छेड़ दिया है। मानव पर संकटकालीन बादल और तेजी से छा रहे हैं। विज्ञान–टेक्नोलॉजी से जीवन की ऊपरी गति बढ़ी है पर मानव के भीतर का धर्म और ईश्वर मर गया है। प्रकृति और इतिहास के अलगाव से आत्मनिर्वासन, अकेलापन, ऊब, अंधकार, निराशा पैदा हुई है।

विज्ञान की प्रविधियों से गति इतनी बढ़ गयी है कि सभी मानवीय संबंध डगमगा गए हैं और प्रेम, सेक्स, धर्म, आचरण – सभी मर्यादाएँ नष्ट हो गई हैं। धर्मवीर भारती ने "अंधायुग" में इसी टूटन की पीड़ा को बृहत्तर मानवीय संदर्भों में अभिव्यक्ति दी है – मूल्यांधता का युग –अंधायुग – "हम सबके मन में गहरा उतर गया है युग / अश्वत्थामा है संजय है – अंधियारा / है दास वृत्ति, उन दोनों वृद्ध प्रहरियों की / अंधा संशय है / लज्जाजनक पराजय है।" जहाँ आदमी आदमी को चीर–फाड़कर खुश है – संस्कृति नदी उदास–विकृत "नदी वधू की नथ का मोती चील ले गई" (समय देवता – नरेश मेहता) माँस–लोभी चील–कौए–गिद्ध जीवन पर मंडराने लगे – मानव का उपजाया सूरज ही उसे निगल गया। समय का रथी चक्रव्यूह में फँसकर हाँफ रहा है, विवशता–असहायता परिवेश में तन गई है। यंत्र दानव के प्रचार–प्रसार ने सम्प्रेषण की सहज प्रकृत गतियों को घेरकर अर्थहीन कर दिया है। प्रकृति, मनुष्य, इतिहास और यंत्र के बीच जो रिश्ता बना है, अवमानवीकरण अपराधीकरण, अप–संस्कृति उसी की देन है। नए संसार की इसी कुशल समस्या से प्रयोगवाद–नयी कविता के कवि जूझते रहे हैं। गजानन माधव मुक्तिबोध के शब्दों में ज्ञानात्मक संवेदना और संवेदनात्मक ज्ञान की संश्लिष्टता से निर्मित नयी कविता मूलभूत संवेदनशक्ति में विलक्षण प्रवृत्ति अपनाती है। यह पूरी कविता कुछ अपवादों को छोड़कर परिवेश के साथ द्वन्द्व–स्थिति में है।

प्रश्न उठता है कि आधुनिक भाव–बोध क्या है? मुक्तिबोध के मत से "मैं अपनी खुद की जिन्दगी और दोस्तों की जिन्दगी से बता सकता हूँ कि अन्याय के विरुद्ध आवाज बुलंद करना आधुनिक भाव–बोध के अंतर्गत है। आधुनिक भाव–बोध के अंतर्गत यह भी आता है कि मानवता के भविष्य–निर्माण के संघर्ष में हम और भी अधिक दत्तचित्त हों, तथा हम वर्तमान परिस्थिति को सुधारें, नैतिक ह्रास को थामें – उत्पीड़ित मनुष्य के साथ एकात्म होकर उसकी मुक्ति की योजना करें।" अंततः अनुभूति की ईमानदारी और प्रामाणिकता ही उसके जीवन जगत के सौंदर्यानुभूति को शक्ति देती है। "कविता में कहाँ कितना फ्राड होता है, यह मैं जानता हूँ। फ्राड को आप कौशल भी कह सकते हैं। नयी कविता का कवि बहुत सचेत है, वह काफी फ्राड करता है।" सच बात यह है कि पुराने कवियों की तरह प्रयोगवादी तथा नयी कविता के कवियों के पास कोई सर्वांगीण दार्शनिक विचारधारा नहीं है, किंतु वह अपने जीवन की वास्तविकता के संपर्क में तो है। नया कवि आज की विषम–सभ्यता के भयानक दृश्यों–कष्टों–वेदनाओं की अभिव्यक्ति करता है – अनुभव वृद्धि के साथ ही वह सौंदर्याभिरुचि का विस्तार और पुनः–पुनः संस्कार करता है। कारण, उसके लिए काव्य रचना केवल व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया नहीं है – वह एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है। इसलिए मूल्य चेतना व्यक्ति की देन न होकर पूरे समाज की देन है। फलतः नयी कविता का भाव–बोध एकान्त का एकालाप नहीं है, समाज से मानव से सीधा "वार्तालाप" है, एक ऐसा वार्तालाप जिसमें भावनात्मक और बौद्धिक परिष्करण की संस्कृति को व्यापक स्वीकृति प्राप्त है। जीवन की विविधता के कारण नयी कविता में कहीं गीत का स्वर है, कहीं आलोचना का स्वर, कहीं रमणीय प्रकृति की अनुभूति का स्वर है तो कहीं आत्मालोचन का रंग। "सच तो यह है कि नयी कविता के भीतर कई स्वर हैं, कई शैलियाँ हैं, कई शिल्प हैं और कई भाव–पद्धतियाँ। नयी कविता एक काव्य प्रकार का नाम है। उस काव्य प्रकार के भीतर अनेकानेक व्यक्तिगत शैलियाँ, शिल्प, रचना–विधान और जीवन–दृष्टियाँ हैं।" (नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध पृष्ठ 3) किंतु छायावाद–प्रगतिवाद की तरह कोई आध्यात्मिक–भौतिक दार्शनिक विचारधारा उसके भाव–बोध में भिदी हुई नहीं है। अज्ञेय के शब्दों में, नयी कविता सबसे पहले एक "नयी मनःस्थिति का प्रतिबिंब है – एक नए मूड का – एक नए राग संबंध का रूप है।" (सर्जना और संदर्भ : नयी कविता, पृ. 172)

18.4 प्रमुख प्रवृत्तियाँ

प्रगतिवाद और नयी कविता एक ओर तो द्वितीय विश्व युद्ध की भयावह चेतना से दूसरी ओर स्वाधीनता–प्राप्ति के बाद के परिवेश से प्रभावित और आंदोलित रही है। अस्तित्ववाद–आधुनिकतावाद मार्क्सवाद और गांधी–लोहियावाद के विचारों ने इन रचनाकारों में एक ऐसी अंतर्दृष्टि उत्पन्न की है जो जीवन–जगत के गतिशील और जटिल यथार्थ को नए कोणों से अभिव्यक्ति देती है। मनोविश्लेषणशास्त्र और अस्तित्ववाद के प्रभाव–दबाव ने मानव की निराशा–पराजय–मृत्युबोध को रचना में ढाला है। मध्य वर्ग की आशाओं–आकांक्षाओं ने काव्य–सृजन में शहरीकरण से उत्पन्न

समस्याओं के साथ संस्कृति तथा परम्परा के भीतर से निकली आधुनिकता–बोध की प्रक्रिया और व्यक्ति के आत्म–निर्वासन की पीड़ा को तीव्र किया है। पुराने मूल्यों के मोह–भंग ने इस कविता में राजनीति और व्यवस्था के मानवद्रोही चरित्र को व्यंग्य–वक्रोक्ति, विसंगति और विडम्बना की काव्य–भाषा में इस ढंग से उजागर किया है कि पूरे परिवेश की समझ पैदा होती है। इस काव्य–धारा की प्रमुख विशेषताओं या प्रवृत्तियों को इस प्रकार निरूपित किया जा सकता है :

18.4.1 काव्य संबंधी पुरानी अवधारणा में बदलाव

इन नए रचनाकारों ने काव्य से संबंधित पुरानी अवधारणा से असहमति व्यक्त करते हुए नए काव्य–चिंतन की प्रवृत्ति को खुलकर बढ़ावा दिया है। अज्ञेय ने कहा कि युग–परिवर्तन के साथ हमारे रागात्मक संबंध बदल गए हैं। जीवन–जगत को देखने की दृष्टि के बदलाव ने राग–बोध को परिवर्तित कर दिया है। आज की कविता "मूलतः अपने को अपनी अनुभूति से पृथक करने का प्रयत्न है, अपने ही भावों के निर्वैयक्तीकरण की चेष्टा"। कविता आत्माभिव्यक्ति नहीं है, आत्म से पलायन है। रोमान्टिक भाव–बोध के विरोध से उपजी गैर–रोमान्टिक दृष्टि का समर्थन अज्ञेय ने किया। जगदीश गुप्त ने कहा कि कविता सहज आंतरिक अनुशासन से मुक्त वह अनुभूतिजन्य सघन लयात्मक शब्दार्थ है, जिसमें सह–अनुभूति उत्पन्न करने की यथेष्ट क्षमता निहित रहती है। (नयी कविता : स्वरूप और समस्याएँ, पृ. 116) इस बात पर आपत्ति उठाते हुए नामवर सिंह ने कहा कि नयी कविता के संदर्भ में जगदीश गुप्त का विचार अपर्याप्त है – वे इस बात को भूल गए जिसे नयी कविता ने हिंदी काव्य–परम्परा में जोड़ा है। इसलिए "अनुभूति" तो डॉ. गुप्त को याद रह गई – सृजनात्मकता भूल गई।" (कविता के नए प्रतिमान) "सह–अनुभूति" का प्रश्न रसानुभूति के विरोध में उठाया गया। पुरानी काव्यानुभूति से नए सृजन की अनुभूति कितनी भिन्न है – इस बात को स्पष्ट करने का प्रयत्न नहीं किया। नकेनवादी मानते रहे कि कविता जटिल अनुभूतियों–संवेदनाओं की अभिव्यक्ति है। अनुभूति की जटिलता और भाव–सम्प्रेषण की समस्या को नयी कविता के सभी कवियों ने बार–बार उठाया। केदारनाथ सिंह ने कविता को एक विचार– एक अनुभूति –एक दृश्य और इन सबका कलात्मक संगठन मानकर बिंब–सिद्धान्त का संकेत दिया। अंत में विजयदेवनारायण साही ने काव्य–संवेदना की बदली हुई प्रवृत्ति के कारण का संकेत देकर कहा कि नयी कविता की बहसों में यह मान्यता अंतर्भूत रही है कि न सिर्फ कविता का कलेवर बदला है बल्कि गहरे स्तर पर काव्यानुभूति की बनावट में ही अंतर आ गया है।"

18.4.2 लघु मानव दर्शन में नए व्यक्तित्व की खोज

यह बात कई कोणों से उठाकर कही गई कि नयी कविता लघु मानव के परिवेश की कविता है। इसीलिए यह प्रश्न भी उठा है कि लघु मानव कौन है? क्या है? किस विचारधारा की सोच से उपजा है? क्या यह व्यक्तिवादी मानव है? अहंग्रस्त–आत्मलीन, समाज–विमुख, कुंठाग्रस्त, वर्जना–पीड़ित मानव है? या इस व्यक्ति की कोई और ही किस्म है? महाकाव्यों का उदात्त नायक–आदर्श नायक कहाँ गायब हो गया है? लक्ष्मीकांत वर्मा ने "नए प्रतिमान : पुराने निकष" पुस्तक में प्रथम बार लघु–मानव को "सहज मानव" कहकर चर्चा के केन्द्र में रख दिया। फिर साही जी ने "लघु मानव के बहाने हिंदी कविता पर एक बहस" शीर्षक निबंध में लघु–मानव को "सहज मानव" या "महत् के स्थान पर लघु की स्थापना" का नयी कविता में समर्थन किया। जगदीश गुप्त ने कहा कि "पहले अपने को लघु कहना, फिर लघुता की महानता प्रदर्शित करना, प्रकारांतर से अपने को महान कहना है।" कहना न होगा कि इस लघु मानव को अमरीकी पूँजीवादी भोगासक्त, व्यक्तिवादी मानव का पर्याय मानकर ग.मा. मुक्तिबोध को कहना पड़ा, "आधुनिक भाव–बोध वाले सिद्धान्त में, जन–साधारण के उत्पीड़न–अनुभवों, उग्र विक्षोभों और मूल उद्वेगों का बायकाट किया गया। "लघु मानव" वाला सिद्धान्त लाकर जन–साधारण की मार्मिक आध्यात्मिक शक्तियों और भव्यताओं से आँखे फेर ली गईं।" मुक्तिबोध के इस कथन को व्यापक समर्थन मिला और लघु–मानव के दर्शन को अस्वीकार कर दिया गया। स्वयं अज्ञेय के सृजन में "अपराजित मानव" का रूप देखिए "पर हारता नहीं, न मरता है – पीड़ित श्रमरत मानव / अविजित दुर्जय मानव / कमकर श्रमकर शिल्पी, स्रष्टा / उसकी मैं कथा हूँ। (मैं वहाँ हूँ)

18.4.3 काव्य की अर्थ-भूमि का विस्तार और व्यक्ति स्वातंत्र्य पर बल

छायावाद ने अर्थ का संकोच कर दिया था और प्रगतिवाद काव्य विचार को फार्मूले की तरह आरोपित करने के कारण समग्र जीवन–जगत की चिंताओं से हटकर एकांगी हो गया था। पूरी स्थिति को समझने

के बाद प्रयोगवाद और नयी कविता ने समग्र–मानव को सृजन के केन्द्र में स्थापित किया। उनके लिए न कोई विषय वर्जित है – न कोई विषय अछूत। गली के अँधेरे कोने में खड़े छोटे पौधे का सौंदर्य भी कवि को आकृष्ट कर सकता है। सुंदर और कुरूप, पूरा जीवन नयी कविता में काव्य–विषय, काव्य–वस्तु बना है। हर विषय को वस्तु बनाकर इन कवियों ने काव्य–सृजन किया। फलतः अर्थ–भूमि का विस्तार इनकी एक विशिष्ट प्रवृत्ति रही है। नयी कविता ने व्यक्ति–स्वातंत्र्य की चर्चा भी बार–बार की और कहा क़ि हम मानव की स्वतंत्रता के पक्षधर हैं। मध्य वर्ग की स्वतंत्रता के नाम पर व्यक्ति की आस्थाओं–अनास्थाओं की सजग अभिव्यक्ति की गई। अकेला पीड़ित मानव और समूह मानव दोनों पर विवाद भी कम नहीं हुआ। अज्ञेय–मण्डल के रचनाकारों ने व्यक्ति स्वातंत्र्य पर बल दिया। उनका तर्क था कि स्वाधीन मानव ही स्वाधीन चिंतन कर सकता है – किसी तरह की पराधीनता का शिकार मानव स्वाधीन व्यक्तित्व का निर्माण नहीं कर सकता। मुक्तिबोध ने व्यक्ति–स्वातंत्र्य के नारे को जनता के साथ दगा का नाम दिया– "व्यक्ति–स्वतंत्रता की बात तो करते हैं, लेकिन वह स्वातंत्र्य, जिस मानवीय लक्ष्य–आदर्श के लिए होता है या होना चाहिए, वह अपनी शून्य रिक्तता के धुएँ में खो जाता है। आज के जीवन के जो बुनियादी तथ्य हैं उनके वास्तविक तर्कसंगत निष्कर्षों और परिणामों की ओर जाने में हमें डर मालूम होता है।" इसलिए व्यक्तित्व विकास की बात ही करते हैं – व्यक्तित्व का विकास नहीं कर पाते।

18.4.4 अनुभूति की ईमानदारी और प्रामाणिकता

प्रयोगवाद और नयी कविता के सृजन दौर में अनुभूति की ईमानदारी और प्रामाणिकता पर सर्वाधिक ध्यान मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय और सर्वेश्वर ने दिया। "दूसरा सप्तक" की समीक्षा करते हुए प्रभाकर माचवे ने "कवि–कर्म की ईमानदारी" को काव्य–मूल्य के रूप में घोषित कर दिया। अनुभूति की ईमानदारी का दावा नयी कविता से पहले के कवि भी कम नहीं करते हैं, फिर नयी कविता में "ईमानदारी का क्या अर्थ? छायावाद और प्रगतिवाद के कवियों की ईमानदारी पर प्रयोगवाद और नयी कविता ने संदेह व्यक्त किया और कहा कि छायावादी कवि में "करुणा" और प्रगतिवादी कवियों का "जन–वेदना" का नारा झूठा था – कोरी "बौद्धिक सहानुभूति" मात्र छलना है। रघुवीर सहाय ने कहा कि काव्य–सृजन का "ईमानदारी एक मौलिक गुण है और उस बौद्धिक स्तर का पर्याय है जिस पर आकर हमारा तर्क, पूर्वाग्रह और व्यक्तिगत रुचि के ऊपर उठ जाता है और जिस पर आकर हम में वस्तुओं की वास्तविकता का सही अनुभव होता है। वह उस चेतना के पहले की चीजें हैं जो ज्ञान को क्षेत्रों में विभाजित करती हैं। जैसे ज्ञान एक है वैसे ही ईमानदारी भी समस्त एक है।" अनुभूति यदि अखण्ड और सच्ची है तो वह वस्तुओं के भीतर से निकलती है मात्र छूकर नहीं छोड़ जाती। डॉ. नामवर सिंह ने कहा "इस प्रकार ईमानदारी एक बौद्धिक संगठन है। गरज कि ईमानदारी समझदारी का दूसरा नाम है।" (कविता के नए प्रतिमान) प्रयोगवाद के बाद नई कविता पर जब लक्ष्मीकांत वर्मा ने "नयी कविता के प्रतिमान' पुस्तक लिखी तब उन्होंने "अनुभूति" के साथ "प्रामाणिकता" का प्रश्न उठाया। सैद्धान्तिक और व्यावहारिक स्तर पर ग.मा. मुक्तिबोध ने "एक साहित्यिक की डायरी" में "कलाकार की व्यक्तिगत ईमानदारी" पर दो किस्तों में चर्चा की। उनके विचार से व्यक्तिगत ईमानदारी का एक अर्थ है जिस अनुपात में, जिस मात्रा में, जो भावना या विचार उठा है उसको उसी मात्रा में प्रस्तुत करना। उनके अनुसार सच्ची ईमानदारी का अर्थ है – "वस्तु का वस्तुमूलक आकलन करते हुए लेखक उस आकलन के आधार पर वस्तु–तत्व के प्रति सही–सही मानसिक प्रतिक्रिया व्यक्त करे।" अर्थात रोमान्टिक आत्मनिष्ठता को त्यागकर विवेकयुक्त वस्तुनिष्ठता का पालन। नयी कविता के ज्यादातर कवि ईमानदार अनुभूति की राह पर चले। श्रीकांत वर्मा ने लिखा "मैं गौर से सुनता हूँ / औरों के रोने को / मगर दूसरों के दुःख को / अपना मानने की बहुत / कोशिश की; नहीं हुआ।"

18.4.5 रस के प्रतिमान की अप्रासंगिकता

लगभग सभी नये कवियों ने तनाव–घिराव, आक्रोश–यंत्रणा, की कविताएँ रची हैं। इन कविताओं का मूल्यांकन रस के प्रतिमान से नहीं किया जा सकता। क्या कोई "अंधायुग" या "चाँद का मुँह टेढ़ा है" का मूल्यांकन रस–प्रतिमान से कर सकता है? यदि करता है तो क्या यह अनौचित्य नहीं होगा? नयी कविता हृदय की मुक्तावस्था नहीं है, बुद्धि की मुक्तावस्था का पर्याय है। इसलिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल और डॉ. नगेन्द्र का रस प्रतिमान नयी कविता के आस्वाद–मूल्यांकन में असमर्थ है। अज्ञेय ने रसाश्रयी दृष्टि के विरोध का कारण खोजते हुए लिखा (1) रस का आधार है समाहिति, अद्वन्द्व, किंतु नयी कविता द्वन्द्व और असामंजस्य की कविता है। (2) नयी कविता वर्तमान पर केंद्रित है जबकि रस की दृष्टि

अतीतोन्मुख रहती है। – नयी कविता का विषय है क्षण की अनुभूति जबकि रस का आधार है (जन्मांतर्गत) वासना और स्थायी भाव।" जाहिर है कि नयी कविता रसाश्रयी कविता नहीं है। इसलिए नयी कविता पर "रस" को लेकर बात करना निरर्थक है। नयी कविता हमें तन्मय नहीं करती, हमारा चैन तोड़ देती है, विचार के तनाव से मथती है, छीलती है। "अंधेरे में" कविता को इसी कथन के आधार पर देखें तो पाएँगे कि वह हमें बेचैन कर देती है। जटिल अनुभूतियों में नयी कविता जीवन के नए संकट परोसती है, जो आनंद से कोसों दूर है।

18.4.6 स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद का मोह-भंग

स्वाधीनता–प्राप्ति के बाद का उल्लास थोड़ा–सा समय बीतते ही निराशा की काली चादर में लिपटने लगा। नेहरू–युग ने जनता की आशाओं–आकांक्षाओं को जलाकर राख कर दिया। अमीर और गरीब के बीच खाई और चौड़ी हो गई तथा विदेशी पराधीनता का संकट गहराने लगा। पूरा देश एक ऐसी उथल–पुथल के दौर से गुजरा कि जागरूक और संवेदनशील रचनाकार "मोह–भंग" की पीड़ा से कराहने लगा। विश्व–स्तर पर साम्राज्यवादी–पूँजीवाद के शीतयुद्ध की छाया, असीम प्राविधिक विकास और स्थापित व्यवस्था के बढ़ते हुए विराट, संवेदनशील, अमानवीय तंत्रों की स्वार्थपरता के कारण सर्वग्रासी मानव–विनाश का खतरा, हर स्तर पर झूठ, फरेब, आडम्बर–पाखण्ड और भ्रष्टाचार से भारतीय लोकतंत्र चरमराने लगा। राजनीति इतनी ओछी और मानव–द्रोही हो गई कि व्यवस्था के बड़े–बड़े तंत्रों के बीच आम आदमी अकेला पड़ गया। नयी कविता में प्रबल व्यवस्था विरोध का जो स्वर उभरा है उसके मूल कारक सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक हैं। पीड़ा–पराजय, निराशा, आक्रोश, अकेलापन, अकुलाहट, अंधेरा–यंत्रणा, विसंगति–विडम्बना, हूक और हाय–हाय का यह जो रचना–संसार नयी कविता में व्याप्त है वह मात्र पश्चिमी अस्तित्ववाद की देन नहीं है। यह एक तरह का भारतीय अस्तित्ववाद है, जिसमें "मोह–भंग" से उत्पन्न तनाव है। धर्मवीर भारती का "अंधायुग" हो, सर्वेश्वर की "गर्म हवाएँ", रघुवीर सहाय का "आत्महत्या के विरुद्ध" हो या मुक्तिबोध का "चाँद का मुँह टेढ़ा है" की कविताएँ हों – चारों ओर जनता की चीख से भरा माहौल है। गांधी की चप्पल से जनता की चाँद को गंजे करने का काम इसी राजनीतिक माहौल में किया गया। "अँधेरे में" कविता में मुक्तिबोध ने लिखा है "अँधेरे में डूबे हुए मकानों के छप्परों पार से / रोने की पतली सी आवाज / सूने में काँप रही, काँप रही दूर तक / कराहों की लहरों में पाशव–प्राकृत / वेदना भयानक थरथरा रही है।" गांधी की हत्या के बाद नैतिक मूल्यों का विघटन इतनी तेजी से हुआ कि पूरा परिवेश मूल्यांधकार से भर गया। नयी कविता के रचनाकारों ने अनगिनत मोह–भंग की कविताएँ लिखी हैं, इस काव्य की काव्य–संवेदना में "मोह–भंग" के कसकते–करकते अनुभवों का दारुण इतिहास निहित है।

18.4.7 प्रयोग-परम्परा और आधुनिकता

राहों के अन्वेषी प्रयोगशील कवि, कविता को प्रयोग का साधन मानते हैं – साध्य नहीं। इन कवियों का साध्य है – नए सत्यों का उद्घाटन और मानव–मुक्ति के मार्गों की तलाश। इस क्षेत्र में इन सभी के प्रेरणा–स्रोत निराला जी रहे हैं। इन कवियों ने अपनी "परम्परा" के गतिशील तत्वों को पहचान कर रचना में ढाला तथा "रूढ़ि" के बासीपन का निषेध किया। इनके लिए "परम्परा" का अर्थ यदि ऐतिहासिक चेतना रहा है तो दूसरा अर्थ "निरंतरता" भी है अर्थात् रचना में "प्राचीन नमक" का नया स्वाद। "परम्परा" और "आधुनिकता" पर इन सभी कवियों ने करारी बहसें कीं। मूल विचार यह है कि परम्परा से ही आधुनिकता फूटती है, वह आकाश से नहीं टपकती। आधुनिकता – नए संदर्भों में देखने की दृष्टि है, रूढ़ियों की अस्वीकृति है, मध्ययुगीन पिछड़ी जीवन–दृष्टियों का विरोध है – एक तरह की सामयिक नवीनता है। प्रयोगवादी और नयी कविता की सर्जनात्मकता ने आधुनिकता को इतना अधिक महत्व दिया कि वह इन सभी के काव्य में विधि न रहकर एक मूल्य बनकर आदर पाती रही। आधुनिकता इन सभी के लिए "स्व–चेतना" है, "विवेक वयस्कता" है, परिवेश के प्रति सजगता है। फलतः आधुनिकता नए सृजन में बौद्धिकता, तार्किकता तथा मानव–विवेक बनकर उभरी है।

18.4.8 विसंगति और विडम्बना

अचानक गंभीर प्रसंगों के बीच हल्की बात कहकर गंभीरता को एक झटके से तोड़ने की प्रवृत्ति का "सप्तकों" के कवियों ने एक तकनीक के रूप में व्यापक स्तर पर उपयोग किया। छायावादी कवियों में

निराला ने इसका प्रयोग गंभीर कही जाने वाली कविताओं में किया जैसे ''सरोज स्मृति'' में बीच में ''पद फटे बिवाई'' जैसे प्रयोग शोक की एकरसता को तोड़ते हैं। प्रयोगशील और नयी कविता के कवियों ने यह अहसास किया कि विडम्बना कविता में मात्र शब्दों का क्रीड़ा–कौतुक ही नहीं है उसमें ऐतिहासिक विसंगतियों का गहरा बोध है। डॉ. रघुवंश ने विपिन कुमार अग्रवाल पर टिप्पणी की कि ''विपिन सदा ही विसंगतियों का प्रयोग सहज बोध के वर्णनों के साथ या अंतर्गत करता है और इस प्रकार इनके माध्यम से वस्तुओं–स्थितियों तथा अनुभवों के नए आयाम उद्घाटित होते हैं।'' (साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य, पृ. 305) इसी प्रकार, भवानी प्रसाद मिश्र की ''गीत फरोश'' कविता की प्रमुख विशेषता पर ध्यान दिलाते हुए अज्ञेय ने लिखा, ''इसका कवित्व एक गंभीर बात को निहायत अगंभीर ढंग से कहने में है और यह अगंभीरता कविता के स्वर में है।'' अज्ञेय के इस वक्तव्य से सहमति व्यक्त करते हुए डॉ. नामवर सिंह ने इसे कला पारखी की सही दृष्टि माना है। (कविता के नए प्रतिमान, पृ.165) लक्ष्मीकांत वर्मा ने विसंगति–विडंबना के आधारभूत कारणों पर ''नए प्रतिमान : पुराने निकष'' में विस्तार से चर्चा करने के बाद कहा है कि आज हम विसंगतियों (ऐबसर्डिटी) के बीच जी रहे हैं – यह विसंगति आज जीवन के हर क्षेत्र में व्याप्त है। चारों ओर सिनिसिज्म–अराजकता पनप रही है – इसी स्थिति का अहसास कराने के लिए नयी कविता के कविवर ''शब्दों का शरारतपूर्ण सह–संयोजन'' करते हैं। पश्चिम में औद्योगीकरण–शहरीकरण–मशीनीकरण की स्थिति से उपजी विसंगति–विडम्बना की स्थिति को ''न्यू क्रिटिसिज्म'' ने उभारा है और इस पर अस्तित्ववादी विचार के खेमों में भी गहमागहमी रही है। कामू–सार्त्र के साहित्य में विसंगति–विडम्बना के कारण युगीन संदर्भ आए हैं। यही बात हिंदी की नयी कविता के लिए भी सच है कि विसंगति–विडम्बना की स्थितियों के कारण हमारे युग–संदर्भों में हैं। मुक्तिबोध ने "ब्रह्मराक्षस" कविता में इस दौर की स्थिति पर कहा है – "पिस गया वह दो पाटों के बीच/ ऐसी ट्रेजेडी है नीच।"

18.4.9 अस्तित्ववादी और आधुनिकतावादी स्वर

प्रयोगवादी और नयी कविता के स्वर पर अस्तित्ववाद–आधुनिकतावाद का काव्य–मुहावरा हावी है। पश्चिमी संसार को दो विश्व–युद्धों ने भीतर से इतना भयाक्रांत कर दिया कि पूरी मनोभूमिका पर "अस्तित्व का संकट" मंडराने लगा। साम्राज्यवाद–पूँजीवाद की शहरीकरण प्रक्रिया और टेक्नोलॉजी–विज्ञान की गति तथा होड़ ने एक "भयानक समय" ला दिया–मृत्यु, अवसाद, आत्मनिर्वासन, अकेलापन। इसी स्थिति से अस्तित्ववादी विचार दर्शन में पैठते गये हैं। किर्केगार्द– हेडेगर, कामू– नीत्से– सार्त्र– आस्था– अनास्थावादी दोनों तरह के अस्तित्ववादियों में "परिवेश" की विकृतियों से उपजी विचार–छायाएँ हैं। कार्ल यास्पर्स डर कर ही समकालीन तकनीकी सभ्यता को "सर्वग्रासी सामाजिक रोग" कह रहे थे। विश्व–स्तर पर फैली हताशा–निराशा का प्रभाव हम पर भी पड़ा। भारत आजादी के बाद "मोह–भंग" की किस पीड़ा से नहीं गुजरा है। डॉ. रामविलास शर्मा ने नयी कविता के कवियों पर ही नहीं, आलोचकों तक पर अस्तित्ववाद का असर माना है। इसके पीछे हमारी स्थिति–परिस्थिति की पराजय–हताशा का तर्क है। "शीत–युद्ध" की डरावनी स्थिति का आंतक है – इसीलिए नई कविता में व्यापक स्तर पर अस्तित्ववादी प्रवृत्तियाँ सक्रिय हैं। नयी कविता की काव्यानुभूतियों में "क्षणवाद" इसी अस्तित्ववाद की कोख से जन्मा है। नयी कविता के व्यक्तित्ववाद, व्यक्ति–स्वातंत्र्यवाद पर आधुनिकतावाद की सीधी छाप है – पूँजीवादी जीवन–पद्धति का "रक्तपायी वर्ग के साथ नाभि–नाल संबंध" की ग.मा. मुक्तिबोध यों ही चर्चा नहीं करते। इसके पीछे उच्च मध्यवर्गीय भोगवादी मानसिकता का पूरा तंत्र है। "खाओ–पियो मौज करो", "लूटो खाओ – हाथ न आओ" का अवसरवादी–चिंतन इसी आधुनिकतावाद की देन है "उदरम्भरि भर अनात्म बन गए / भूतों की बरात में कनात से तन गए / किसी व्यभिचारी के बन गए बिस्तर' ("अँधेरे में" कविता) का अर्थ–संदर्भ भोगवादी जीवन–पद्धति की विकृतियों से जुड़ा है। कहना न होगा कि आजादी के बाद यही पूँजीवादी–उपभोक्तावादी वर्ग फला–फूला है और उसने आम आदमी के श्रम पर ही ऐश की है। इन्हीं आधुनिकतावादियों ने "व्यक्ति" को इतिहास, परम्परा, दर्शन और भविष्य से काटकर केवल वर्तमान पर, उसकी अर्थवत्ता पर बल दिया है। मुक्तिबोध ने "पूँजीवादी समाज के प्रति" कविता में इसी उच्च मध्य वर्ग की नीयत को धिक्कारा है "इतना काव्य, इतने शब्द, इतने छंद / जितना ढोंग, जितना भोग है निर्बन्ध / इतना गूढ़ इतना गाढ़, सुन्दर जाल / केवल एक जलता सत्य देने टाल।" मार्क्सवादी कवियों – आलोचकों ने आधुनिकतावाद में अज्ञेय, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा, श्रीकांत वर्मा आदि की गणना की है तथा मुक्तिबोध, शमशेर, रघुवीर सहाय को आधुनिकतावाद के व्यक्ति–केन्द्रित जन–विरोधी चरित्र से दूर रखा है।

18.4.10 प्रकृति सौंदर्य पर नई दृष्टि

नए कवियों ने प्रकृति–सौंदर्य के प्रति अपना विशेष अनुराग व्यक्त किया है। लेकिन इन सभी कवियों का प्रकृति–प्रेम छायावादी प्रकृति प्रेम से तत्वतः भिन्न है। छायावादी कवि प्रकृति में एक विराट सत्ता का संकेत पाता था और मानसिक स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति में भी प्रकृति का पूरा उपयोग करता था – प्रकृति उसके भावों का आलम्बन थी। हृदय की स्वच्छंदता समाज के सभी बंधनों को तोड़कर "तन्वंगी गंगा ग्रीष्म विरल" के गीत गाती थी। प्रयोगवाद तथा नयी कविता के काल में कवि पर जीवन–जगत की स्थिति–परिस्थिति के तनाव–संघर्ष, औद्योगिक समाज के आरंभ की टूटन, नेहरू युग की निराशा से उत्पन्न मोह–भंग उसकी चेतना को डसता था। इसी तनाव को कम करने के लिए वह प्रकृति के पास जाता है। मानव के द्वारा प्रकृति के विनाश की चिंता, अज्ञेय ने नंदादेवी के वन–वैभव को लेकर बार–बार व्यक्त की है। भवानी प्रसाद मिश्र, सर्वेश्वर, नरेश मेहता, गिरिजा कुमार माथुर, धर्मवीर भारती, हरिनारायण व्यास, कुँवर नारायण आदि सभी कवि प्रकृति को सामाजिक "अंतर्दर्शन" के रूप में लेते हैं। "सन्नाटा", "सतपुड़ा के जंगल", "पी के फूटे बैन" आदि ने बिन्ध्य–प्रकृति की महिमा को अनेक नए प्रतीकों–बिबों में वाणी दी है। सर्वेश्वर ने ग्रामीण संवेदना के प्रकृति गीत रचे हैं तो गिरिजा कुमार ने नारी देह की लय को व्यक्त करने के लिए "शिशिर निशा–सी लम्बी पलकें झुकती देखी हैं"। नरेश मेहता में आदिम–प्रकृति की गंध का अद्भुत रंगीला संसार है "नभ की आम छाँव में बैठा बजा रहा वंशी रखवाला"। मूल बात यह कि इन कवियों ने जीवन के राग–विराग, आस्था–अनास्था को व्यक्त करने में प्रकृति–बोध का सहारा लिया है।

18.4.11 काव्यरूप

इन नए कवियों ने सभी प्रचलित काव्य–रूपों में या तो सुधार किया है या फिर सर्वथा नूतन काव्य–रूपों का खुलकर प्रयोग किया है। पुराने प्रबंध–काव्य के "अखण्ड कथात्मकता और अखण्ड रसात्मकता वाले रूढ़ ढाँचे को तोड़कर एक नवीन प्रबंध–चेतना को विकसित किया। धर्मवीर भारती के "अंधायुग" और कुँवर नारायण की "आत्मजयी" को पुराने ढंग का प्रबंध–काव्य नहीं कहा जा सकता है। कथा का उपयोग विचार–विशेष के केन्द्र को आलोकित करने के लिए किया गया है और प्रभाव की दृष्टि से कृति "रस–चेतना" से कोसों दूर हैं। इसी तरह प्रयोग–सिद्धि का आलम यह है कि इस दौर में प्रबंध का स्थानापन्न "नयी लम्बी कविताओं" को बनाया गया। अज्ञेय की "असाध्य वीणा" प्रगतिपरक मूड अपनाकर भी स्थिति–विशेष में "कलाकार हूँ नहीं शिष्य साधक हूँ" की साधना है। मुक्तिबोध तो लम्बी नाटकीय कविताओं के सफल कवि के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं। "ब्रह्म राक्षस" तथा "अँधेरे में" जैसी कविताएँ फैण्टेसी काव्य–रूप का ऐसा एकाग्र और सार्थक उपयोग करती हैं कि विचार–शृंखला के विस्तार में एक गहरी अंतर्योजना की प्रतीति होती है। इस दौर के सभी कवियों ने विचार–केंद्रित लम्बी कविताएँ लिखी हैं जिनमें सर्वेश्वर की "कुआनो नदी" विशेष उल्लेखनीय है। इस कविता में दृश्य फिल्म की रील की तरह घूमते हैं। दूसरी ओर नयी कविता में छोटी, कसी कविताओं का काव्य–रूप "हीरे के क्रिस्टल" की तरह दमकता है जिसमें कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक अर्थ भरा गया है। शमशेर, अज्ञेय, भवानी भाई, रघुवीर सहाय आदि ने जापानी काव्य–रूप हाइकू, अंग्रेजी की "ड्रेमेटिक पोयट्री" तथा गाँव में मौजूद कजली–लावनी–आल्हा के काव्य–रूपों को नए साँचे में ढाला है। काव्य–रूपों का नया प्रयोग इस सर्जनात्मकता की अपनी शक्ति बना है। फलतः ग़ज़ल–नवगीत, काव्य–नाटक के नए रूप नयी कविता की सर्जनात्मकता को नया परिप्रेक्ष्य देते हैं।

18.4.12 काव्य भाषा

नए साहित्य के प्रसिद्ध आलोचक रामस्वरूप चतुर्वेदी ने खड़ी बोली की विकास परम्परा पर विचार करते हुए "हिन्दी नवलेखन" तथा "भाषा और संवेदना" जैसी पुस्तकों में नई संवेदना और काव्य–भाषा की सर्जनात्मकता के लगभग सभी पहलुओं पर विचार किया है। खड़ी बोली जन–विद्रोह की स्वाधीनता संग्राम में भाषा बनी और छायावाद के कवियों ने उसका भरपूर सर्जनात्मक उपयोग किया। प्रगतिवाद ने भाषा के आभिजात्य को तोड़कर उसे बोलचाल की निकटता प्रदान की। नए कवियों ने काव्य–भाषा पर विचार करते हुए भाषा और काव्य–भाषा के अंतर को समझा–समझाया तथा माना कि "भाषा जितनी ही सर्जनात्मक होगी कलाकृति उतनी ही विशुद्ध एवं प्रामाणिक होगी।" अज्ञेय ने नए सौंदर्य–बोध तथा नए सत्यों की अभिव्यक्ति के लिए "पुरानी भाषा को अपर्याप्त" मानकर नया भाषा–संघर्ष शुरू किया। साथ ही, सम्प्रेषण–व्यापार तथा साधारणीकरण का प्रश्न भाषा के संदर्भ में उठाते हुए कहा कि "विशेष ज्ञानों के इस युग में भाषा एक रहते हुए भी उसके मुहावरे अनेक हो गए हैं।" (दूसरा सप्तक, पृ. 10) भाषा का बदलता हुआ रूप नए कवि को यह सोचने के लिए विवश करता है कि "जरा भाषा के मूल प्रश्न पर शब्द और

उसके अर्थ के संबंध पर ध्यान दीजिए / शब्द में अर्थ कहाँ से आता है, कैसे बदलता है, अधिक या कम व्याप्ति पाता है?'' भाषा में लगातार प्रयुक्त होने वाले शब्दों को निरंतर बरतने से उनका अर्थ–चमत्कार मर जाता है और चमत्कारिक अर्थ अभिधेय बनता रहता है। यों कहे कि कविता की भाषा निरंतर गद्य की भाषा होती रहती है। इस प्रकार कवि के सामने हमेशा चमत्कार सृष्टि की समस्या बनी रहती है – वह शब्दों को निरंतर नया संस्कार देता चलता है। और वे संस्कार क्रमशः सार्वजनिक मानस में पैठ कर फिर ऐसे हो जाते हैं कि उस रूप में कवि के काम के नहीं रहते हैं। ''वासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।'' कालिदास ने ''वागर्थ प्रतिपत्तये'' वाली बात से इसी बात को उठाया था और यह समस्या आज भी सर्जक के सामने उपस्थित है। अपनी शब्द–प्रयोग–शक्ति से कवि उस अर्थ की प्रतिपत्ति करता है जो पुनः रागात्मक संबंध स्थापित कर सके। साधारणीकरण का अर्थ भी यही है। कवि भाषा–प्रयोग विधि की ताकत से नए सत्यों को सम्प्रेष्य बनाकर उनका साधारणीकरण करता है – साधारणीकरण का अर्थ है भाषा का भावमय प्रयोग। आधुनिक ज्ञान–विज्ञान की समूची प्रगति और प्रवृत्ति विशेषीकरण की है, इस बात को समझकर ही नया कवि भाषा को नए क्षेत्रों से ग्रहण कर अपने संदर्भ में रचता है। गद्य और पद्य के पुराने अंतर को मिटाकर भाषा को जीवन–संग्राम में उतारता है और हर कीमत चुकाकर भी उसे पराजित नहीं होने देता। ग.मा. मुक्तिबोध की ऊबड़–खाबड़ गद्यात्मक भाषा की लय में अर्थ की गहराई और सर्जनात्मकता, सामाजिक–राजनीतिक संदर्भों की समझ और सक्रियता से आती है। मुक्तिबोध की भाषा जटिल है, उसमें अर्थ के अनेक स्तर हैं। भवानी भाई ''जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख / और उसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिख'' जब कहते हैं तो बोलचाल की भाषा में सहज सर्जनात्मक क्षमता का संकेत देते हैं क्योंकि सरल–सहज भाषा लिखना ही सबसे कठिन है – जोखिम भरा काम है।

रघुवीर सहाय के संकलन ''सीढ़ियों पर धूप में'' की भूमिका में अज्ञेय ने लिखा है, ''काव्य के जो भी गुण बताए जाते या बताए जा सकते हैं, अंततोगत्वा भाषा के ही गुण हैं।'' इसी बात को अज्ञेय ने फिर ''तारसप्तक'' द्वितीय संस्करण (1966) में कहा ''काव्य सबसे पहले शब्द है। और सबसे अंत में भी यही बात बच जाती है कि काव्य शब्द है। सारे कवि–धर्म इसी परिभाषा से निःसृत होते हैं।'' ''नयी समीक्षा'' ने पश्चिम में काव्य–भाषा को प्रतिमान के रूप में स्वीकार किया है। इसी तरह की कोशिश हिंदी में भी दिखाई देती है और काव्य–भाषा को मूल्यांकन का मूलाधार मानने की बात उठाई गई है। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने ''भाषा और संवेदना'' में कहा है ''आज की कविता को जाँचने के लिए जो अब सचमुच 'प्रास के रजत पाश' से मुक्त हो चुकी है, अलंकार की उपयोगिता अस्वीकार कर चुकी है और छंदों की पायलें उतार चुकी है, काव्य–भाषा का प्रतिमान शेष रह गया है, क्योंकि कविता के संघटन में भाषा–प्रयोग की मूल और केंद्रीय स्थिति है।'' किसी भी युग की सृजन–क्षमता को हम काव्य–भाषा से ही समझ सकते हैं क्योंकि वही एकमात्र विश्वसनीय माध्यम और आधार है। सभी नए कवियों ने काव्य–भाषा की सर्जनात्मकता पर विशेष ध्यान केंद्रित किया। वादों–वायदों से भ्रष्ट भाषा की ओर रघुवीर सहाय ने संकेत देकर कहा कि नए शब्द को खोजने और रचने का अर्थ है कि पूरे अनुभव की वास्तविकता का बोध और सम्प्रेषण। ''नया शब्द'' शीर्षक उनकी कविता नयी कविता के सभी कवियों की मंशा का प्रतिनिधित्व करती है – ''शब्द अब भी चाहता हूँ / पर वह कि जो जाए वहाँ वहाँ होता हुआ / तुम तक पहुँचे / चीजों के आरपार दो अर्थ मिलाकर सिर्फ एक / स्वच्छंद अर्थ दे / मुझे दे / देता रहे जैसे छंद केवल छंद / घुमड़–घुमड़कर भाषा का भास देता हुआ / मुझको उठाकर निःशब्द दे देता हुआ।'' अतः नयी कविता में काव्य–भाषा की सर्जनात्मकता 'जीवन की आग' में रूपांतरित हो गई है।

18.4.13 बिम्ब और प्रतीकों का नयापन

नए कवियों की दृष्टि में ''बिम्ब'' का कितना महत्व है यह कवि केदारनाथ सिंह के ''तीसरा सप्तक'' के वक्तव्य से समझा जा सकता है – ''कविता में मैं सबसे अधिक ध्यान देता हूँ बिंब–विधान पर। बिंब–विधान का संबंध जितना काव्य की विषय–वस्तु से होता है उतना ही उसके रूप से भी। विषय को वह मूर्त और ग्राह्य बनाता है, रूप को संक्षिप्त और दीप्त।'' जाहिर है कि नए कवि ने काव्य–बिंब को मूल्यांकन के प्रतिमान के रूप में महत्व–प्रतिष्ठा दी। ''प्रयोगवादी कवियों ने हमारे आधुनिक मानव–मन की चिंताओं, दुविधाओं और संघर्षों की अनेक मनोदशाओं को बिंब से प्रत्यक्ष किया। आधुनिक संवेदना के अनेक स्तरों को प्रयोगवादी कविता के विशिष्ट बिंबों ने व्यक्त किया। यंत्र युग की मशीनी सभ्यता के बिंब ''योजनांत टैंक'', ''सायरन की आवाज'', ''रेडियो की छाया'' कविता में स्थान पाने लगे। फ्रायड के मनोविश्लेषण के प्रभाव वाले बिंब अज्ञेय के सृजन में ''व्योम के विस्तृत उरोजों पर झुका–सा'' जैसे कथनों

से चमकने लगे। गिरिजा कुमार माथुर के बिंबात्मक प्रयोग रूप–विधान की नई दिशा के संकेत देते हैं। जैसे "फिर मिलेगी कब दही–सी चाँदनी / दूध, घी, नैनू, की–सी चाँदनी।" नयी कविता में रंगों के बिंबों का प्रयोग माथुर ने बहुतायत से किया है। छायावादी कवियों के बिंबधर्मी विशेषणों का विकास भी इस कविता में खूब किया गया "रेशमी छाँहे", "बोझिल उजियाला" आदि। फ्रायड के मत से अवचेतन मन स्मृतियों, अभावगत स्वप्नों, ज्ञात–अज्ञात काम कुंठाओं का भण्डार है – अतियथार्थवादियों ने इस फ्रायडीय विचार का सहारा लेकर बिंब–विधान की मुक्त अनुषंग–पद्धति को बढ़ावा दिया। प्रयोगवादी कवि पर यह प्रभाव व्यापक रूप में मिलता है। खण्डित स्मृति बिंब सभी कवियों ने प्रयुक्त किया – अज्ञेय ने "हरी घास पर क्षण भर" कविता में "हम याद करें / तिरती नाव नदी में / धूले भरे पथ आसाढ़ की भभक/झील में साथ तैरना।" इस प्रकार बिंब की लड़ी को कवि दूर तक ले जाते हैं।

नयी कविता के कवियों ने वस्तु के मानसिक प्रतिबिंबों को केन्द्र में ला दिया है। शमशेर, आत्मगत बिंब और आत्म का वस्तुगत बिंब, दोनों को रचने का प्रयास करते हैं – "एक नीला आइना / बेठोस – सी यह चाँदनी / और अंदर चल रहा मैं / उसी के महातल के मौन में ।" अपने अत्यंत निजी अनुभव के प्रति निर्वैयक्तिक दृष्टि नयी कविता के बिंब–विधान की एक ऐसी विशेषता है जो उसे प्रयोगवाद की आत्म–प्रधान पद्धति से अलग करती है। नयी कविता का विकास बौद्धिक विश्लेषण से अनुभवमूलक संश्लेषण की दिशा में हुआ। इसका गहरा प्रभाव निर्वैयक्तिक बिंब–विधान पर पड़ा। समकालीन यथार्थ को व्यक्त करने के लिए कवियों को विकृति–आकृति वाले बिंब रचने पड़े। मुक्तिबोध ने कहा"मेरी कविताएँ भयानक हिडिम्बा हैं / वास्तव की विस्फारित प्रतिमाएँ / विकृताकृति– बिंबा हैं"। यथार्थ के भीतर यांत्रिक और वैज्ञानिक बिंबों की नयी कविता में भरमार है। मध्ययुगीन गाथाओं, मिथकों, तंत्र–मंत्र के संकेतों, दंतकथाओं को कवियों ने प्रतीकात्मक बिंबों में व्यक्त किया है जैसे "ब्रह्मराक्षस"। सर्वेश्वर ने "लोकतंत्र को लाठी में जूते–सा लटकाये" में प्रतीकात्मक बिंब दिए हैं। इस तरह के बिंबों से नयी कविता इस कदर भर गई है कि ध्यान कविता पर न जाकर बिंबों पर ही केंद्रित होने लगा। जाहिर है कि इस प्रवृत्ति ने नयी कविता का नुकसान भी बहुत अधिक किया है।

बिंब और प्रतीक प्रयोगवाद और नयी कविता की शैली का अंग है। बिंब वस्तु को "मूर्त" करता है, प्रतीक से "संकेत" मिलता है। बिंब ज्ञानेन्द्रियों के सहारे चित्रांकन करता है, प्रतीक "संकेत" के सहारे उसकी किसी विशेषता की अर्थ ध्वनि देता है। शैली के रूप में प्रतीक की गति अधिक है। हमारा ध्यान इस तथ्य पर भी जाता है कि नए कवि प्रतीकवादी पश्चिमी आंदोलन से भी प्रभावित थे। नए कवि नए प्रतीक गढ़ते हैं तथा पुराने प्रतीकों में नया अर्थ–संदर्भ पैदा कर देते हैं। अज्ञेय ने "काल का डमरू नाद" निबंध में कहा है – मानव ही प्रतीक सृष्टा प्राणी है, जीवन और सृजन में वह प्रतीकों से अनेक तरह के कार्य लेता है। ध्यान में रखने की बात यह है कि नए कवियों के प्रतीक रहस्यवादी कवियों के अज्ञात–रहस्यमय प्रतीकों पर एकदम आधारित नहीं हैं। अज्ञेय ने नए प्रतीकों को "यौन परिकल्पनाओं", "जटिल यथार्थ की स्थितियों", "अनकहे को संकेतित करने की" आधुनिक शक्ति का नाम दिया है। "प्रतीक जटिल मनःस्थिति को बोधगम्य बनाते हैं।" "देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच" का नारा अज्ञेय ने दिया और कहा पुराने रूढ़ प्रतीकों से नए सौंदर्य बोध को अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता।

नए कवि पुराने प्रतीकों–मिथकों में नया अर्थ भरते हैं। "मिथ" यहाँ नए प्रतीकात्मक उद्देश्यों के साथ प्रयुक्त किए गए हैं। इतना ही नहीं, अज्ञेय ने "मछली", "सागर", "नदी", "भोर बेला", "हरी घास" जैसे न जाने कितने प्रतीक नए अर्थ–संदर्भ में गढ़े हैं। नयी कविता ने वैयक्तिक और सामाजिक प्रतीकों की सृष्टि में ग.मा. मुक्तिबोध को बहुत आदर दिया है – "लहराओ लहराओ नागात्मक कविताओं के साथ", "अरुण कमल", "बरगद", "भैरव", "अँधेरे में स्याह जल" न जाने कितने प्रतीक उनके हैं। बहुत से नए कवियों ने "कैक्टस", "नागफनी", "गुबरैले", "तेंदुआ" के प्रतीक लिए हैं। सर्वेश्वर ने "काला तेंदुआ" पर कई रचनाएँ की हैं–यह तेंदुआ हमारे इतिहास का नायक भी है और वर्तमान का भी।
वेदों–उपनिषदों–रामायण–महाभारत–पौराणिक प्रसंगों के प्रतीकों का नरेश मेहता, धर्मवीर भारती, कुँवर नारायण, दुष्यंत कुमार, भवानी प्रसाद मिश्र ने "संशय की एक रात", "अंधायुग", "आत्मजयी", "एक कंठ विषपायी", "कालजयी" जैसी कृतियों में कई तरह से उपयोग किया है। प्रकृति और इतिहास–पुराण, देवता और कर्मकाण्ड अर्थात पूरी परम्परा के प्रतीकों का उपयोग इस काव्य में किया गया है। इतना ही नहीं धर्मवीर भारती ने "प्रमथ्युगाथा" में यूनानी कथा का नया प्रतीकात्मक आधार व्यंजित किया

है – प्रमथ्यु स्वर्ग से आग चुराकर धरती पर लाने वाला व्यक्ति है जिसे कविता में मानव व्यक्तित्व की अपार–शक्ति का प्रतीक बनाकर प्रस्तुत किया गया है।

18.4.14 छंद और लय

नए कवियों का प्रयोजन छंदशास्त्र का निर्माण नहीं, बल्कि रचनागत कविताओं में छंद प्रयोगों का पक्ष सामने लाना है। इन सभी की दृष्टि मुक्तिकामी कविताओं में छंद के रूपगत प्रयोग की रही है छंद की रूढ़ प्रणालियों में इनका विश्वास नहीं है। निराला के मुक्त छंद का ये सभी समर्थन करते हैं और उसी राह को आगे बढ़ाते हैं। अज्ञेय के अनुसार विज्ञान और टेक्नालॉजी के विकास ने कविता को "वाचिक परम्परा" से मुक्ति दे दी। नतीजा यह हुआ कि कविता "सुनने" से ज्यादा "पढ़ने" की चीज हो गई। विचार के आग्रह ने "भाव" को दबाकर गद्यात्मकता पैदा की। अब कविता ने इन्द्रिय बदल डाली। पहले वह "कान" से भीतर जाती थी अब "आँख" से। ज्यादातर नए कवियों ने परम्परागत छंदों में नए प्रयोग से नया संस्कार किया। परम्परागत छंदों का ज्ञान ज्यादातर नए कवियों को है। कोई कवित्त– सवैया– दोहा, रोला तोड़कर नए छंद बनाता है और कोई उर्दू–अंग्रेजी के प्रचलित छंद तोड़कर। ग.मा. मुक्तिबोध जैसा विद्रोही कवि भी परम्परित छंद की लय की सुरक्षा का ध्यान रखता है। लय को नयी कविता नहीं छोड़ती चाहे वह कितनी ही गद्यात्मक क्यों न हो। लय से "प्रोज पोयम" में भी मुक्त होने का अर्थ है कवि का कविता से हाथ धो बैठना। मुक्तिबोध ने कहा है "इसका अर्थ यह नहीं है कि इस काव्य–प्रवृत्ति में छंदों का निषेध है। इस धारा के अंतर्गत अनेक कविताएँ छंदोबद्ध हैं।" (मुक्तिबोध रचनावली, भाग–5, पृ.345) हाँ, नए कवियों ने "तुकान्त" तत्व का छंद में विरोध किया। यह सब होने पर भी भवानी भाई, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर आदि ने "तुकांत" के भी अच्छे प्रयोग किए हैं। साथ ही, "नयी कविता" की प्रत्येक कविता का अपना निजी और विशिष्ट छंद है जो उसमें व्यक्त अनुभूतियों की अनिवार्यता से उसी के साथ जन्मा है जैसे जीवधारी की देह जनमती है। मुक्त छंद भी नए कवि का शौक नहीं है–अनिवार्यता है। "मैं खड़ा खोले कटिबंध पिंगल के / मुक्त मेरे छंद भाषा मुक्तक है / मुक्ततम मम भाव पिंगल के।" (जयतु हे कंटक चिरंतन, अज्ञेय) इस कथन से स्पष्ट है कि नए कवि के पास छंद का कोई बना–बनाया साँचा नहीं है – भाव या विचार अपने अनुकूल स्वंय छंद निर्मित करता है। नया कवि छंद की मुक्ति चाहता है ताकि मुक्त छंद में कविता युग की संवेदना की समर्थ वाहक बन सके। छंद मुक्ति का अर्थ "अराजक गद्य" को कविता कह देना नहीं है– लय को विचारानुकूल मोड़ना–सँवारना है। मुक्त–छंद, लोकगीत का छंद, परम्परित छंद का महत्व तभी है जब वह भाव की नव शक्ति और मानव हृदय की सामाजिक मुक्ति का द्योतक बनकर आता है। नया कवि छंद–लय के इस सत्य को कभी नहीं भूलता और जो भूलता है उसकी वह निंदा करता है। (मुक्तिबोध रचनावली) जो कवि आंतरिक लय को छोड़कर मुक्त छंद रचते हैं, उनसे डा. रामविलास शर्मा ने साफ कहा है कि "यदि कोई तुकों की कठिनाई से मुक्त छंद को अपनाए तो उसे बाज आना चाहिए। आजकल मुक्त छंद में जो रचनाएँ होती हैं उनमें प्रवाह की धीरता–गंभीरता के स्थान पर पंगुता–गतिहीनता अधिक रहती है।" समर्थ कवियों ने मुक्त छंद में न जाने कितने गुण, न जाने कितनी विचार–दीप्ति वृत्तियाँ व्यक्त की हैं। शमशेर, गिरिजा कुमार माथुर, भवानी भाई, रघुवीर सहाय के मुक्त छंद इस दृष्टि से बेजोड़ हैं। जगदीश गुप्त ने "अर्थलय" का और गिरिजा कुमार ने "नाद सौंदर्य" का जो सिद्धान्त नयी कविता में प्रतिपादित किया है वह मुक्त छंद की लय–ध्वनि का सौन्दर्य बोध ही है। शब्द–लय और अर्थ–लय की पाठ–विधि, आरोह–अवरोह की गति पर निर्भर है। "संगीत" और "नाद" को ज्यादातर नए कवि कविता में रचाते–बसाते हैं–चाहे वह तीन चरण के "हाइकू" (जापानी), छंद में ही क्यों न हो। हाइकू अज्ञेय ने बहुत लिखे हैं, पर वे जानते हैं कि लय की उपेक्षा करके कविता के प्रभाव और तीव्रता को बनाए रखना कठिन है। अतः लय, शिल्प का महत्वपूर्ण पक्ष है। निष्कर्ष यह कि नए कवियों ने छंद–लय के अनेक नए प्रयोग किए हैं और मुक्त छंद तो नयी कविता का पर्याय ही हो गया है।

18.4.15 मूल्यांकन

प्रयोगवाद और नयी कविता के वस्तु और रूप का नया काव्य–मुहावरा सन् 1960 तक पहुँचते–पहुँचते अपना आकर्षण खोने लगा। अस्तित्ववाद, आधुनिकतावाद, क्षणवाद से भी पाठक ऊबने लगे। सन् 1962 के भारत–चीन युद्ध ने नेहरूयुग का जाल–जंजाल समाप्त कर दिया। अकविता, भूखी पीढ़ी की कविता, पोस्टर कविता, युयुत्सावादी कविताओं के नारे उठे। युवा कवियों ने नई तरह की कविता, नए युग–यथार्थ को लेकर लिखी, जिसे बाद में किसी अन्य सही नाम के अभाव में "समसामयिक कविता" कह दिया

गया। नयी कविता ने व्यंग्य–वक्रोक्ति की प्रवृत्ति को निर्भयता से अपनाया और उसे व्यवस्था या सत्ता–विरोध की ताकत दी। नयी कविता की उपलब्धियाँ अर्थ–भूमि के विस्तार में देखी जा सकती हैं और सीमाएँ रूपवादी–कलावादी रुझानों में झाँकती मिलती हैं। कुछ भी कहिए, प्रयोगवाद और नयी कविता ने पुरानी सौन्दर्याभिरुचियों को बदलने–परिष्कृत करने के साथ हिंदी पाठक की चेतना को जीवन–जगत् के नए सत्यों से जोड़े रखा है।

18.5 सारांश

इस इकाई में आपने प्रयोगवाद और नयी कविता के विषय में अध्ययन किया। आपने देखा प्रयोगवादी कविता के कवियों ने अपने पूर्ववर्ती कवियों से एक अलग प्रकार की मनोभूमि को निर्मित किया। ''तारसप्तक'' प्रयोगवादी काव्य की मनोभूमि को प्रतिनिधित्व करने वाला काव्य संग्रह है। 'अज्ञेय' कविता को केवल प्रयोग के रूप में प्रस्तावित करना चाहते थे, लेकिन आलोचकों ने उसे प्रयोगवाद बना दिया। किसी भी साहित्यिक धारा की तरह प्रयोगवाद में अंतर्विरोध की स्थिति उत्पन्न हुई थी। नकेनवादी उसी अंतर्विरोध का जीवित प्रमाण था। सभी प्रयोगवादी कवि इस बिंदु पर सहमत थे कि 'वे राही नहीं राहों के अन्वेषी हैं।''

प्रयोगवाद के चमत्कारी रूपवाद से कविता को मुक्त करने का प्रयास होने लगा। नयी कविता उसी चमत्कारी रूपवाद से मुक्ति का स्वप्न है। 'नयी कविता' का क्षेत्र प्रयोगवाद की अपेक्षा अधिक व्यापक और गहरा था। नयी कविता में कई तरह की विचारधाराओं का समन्वय हुआ। परस्पर विपरीत विचारधारा के कवि भी नयी कविता के अंतर्गत अपनी काव्य रचना करते रहे। नयी कविता के प्रतिनिधि कवि अज्ञेय और मुक्तिबोध थे। नयी कविता की स्थापनाओं को प्रतिपादित करने के लिए समय–समय पर साहित्यिक संस्था और साहित्यिक पत्रिका को प्रस्तावित किया गया था।

प्रयोगवाद और नयी कविता की काव्य प्रवृति भी अलग–अलग हैं। काव्य प्रवृति में कुछ कवियों ने गैर–रोमान्टिक प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया तो कुछ कवियों ने रोमानी प्रवृत्ति को नए अंदाज में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया। व्यक्तिवादी और समाजवादी दोनों प्रकार के चिंतन से कविता की काव्यानुभूति को निर्मित किया गया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की विडम्बना, घुटन और विसंगति को नयी कविता में देखा जा सकता है। अस्तित्ववाद की धीमी लहर को भी नयी कविता में रेखांकित किया जा सकता है। तमाम सीमाओं के बावजूद नयी कविता ने अनुभूति की ईमानदारी को प्रामाणिक रूप से रचने का संकल्प नहीं छोड़ा। शिल्प के धरातल पर जितने प्रकार के प्रयोग नयी कविता में हुए हैं शायद ही किसी साहित्यिक आंदोलन में हुए होंगे।

18.6 अभ्यास प्रश्न

1. ''प्रयोगवाद और नयी कविता पूर्ववर्ती कविता से भिन्न है।'' इस कथन के आलोक में काव्य प्रवृत्ति का विश्लेषण करें।
2. प्रयोगवाद पर एक टिप्पणी लिखिए।
3. प्रयोगवाद एवं नयी कविता के वैचारिक परिप्रेक्ष्य को स्पष्ट करते हुए उसकी शिल्पगत विशेषताएँ बताइए।

इकाई 19 समकालीन कविता

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप समकालीन कविता का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- समकालीन कविता के स्वरूप से परिचित हो सकेंगे;
- राजनीति और समकालीन कविता का संबंध बता सकेंगे;
- समकालीनता, तात्कालिकता और परम्परा के अर्थ और संदर्भ की चर्चा कर सकेंगे;
- समकालीन कविता की मूल प्रवृत्तियों का विवेचन कर सकेंगे; और
- समकालीन कविता के शिल्प की जानकारी दे सकेंगे।

19.1 प्रस्तावना

"प्रयोगवाद और नयी कविता" इकाई में आप पढ़ चुके हैं कि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद जीवन के हर क्षेत्र में नयी अशाओं–आकांक्षाओं ने जन्म लिया। इन आशाओं–अकांक्षाओं को आर्थिक–सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्वाधीनता के अभाव में सही दिशाओं में फूलने–फलने का अवसर नहीं मिल सका। नेहरू–युग की दिशाहीन राजनीति ने मूल्यों के विघटन की प्रक्रिया को तीव्र किया। धीरे–धीरे जनता की उमंगों पर अवसाद और खिन्नता का अँधेरा गहराने लगा। इस अवसादपूर्ण स्थिति का सीधा प्रभाव सर्जनात्मकता में अभिव्यक्त होता हुआ दिखाई दिया। आस्थावादी जीवन मूल्यों के स्थान पर अनास्थावादी मूल्य चेतना का कुहराम उठ खड़ा हुआ। फलतः नयी कविता–आन्दोलन मोहभंग, आत्मनिर्वासन, अकेलापन, विसंगति–विद्रूपता आदि के भाव–बोध को लेकर रचना–कर्म में आया। नयी कविता का यह काव्य–मुहावरा सन् 1960 के आसपास घिसकर अपना आकर्षण खोने लगा। स्वयं नयी कविताओं के सभी जागरूक कवि अपने काव्य–मुहावरे की लीकों से उत्पन्न अपर्याप्तता का अनुभव करते हुए नवीन जीवन जगत के यथार्थ को व्यक्त करने की बेचैनी के अहसास से तिलमिलाने लगे। इसी बेचैनी से

उत्पन्न नई प्रश्नाकुलताओं, चिन्ताओं, तनावों, संघर्षों, चुनौतियों के कारण सर्जनात्मकता में आक्रोश, विद्रोह, विक्षोभ, असन्तोष के तीखे स्वर उभर पड़े। युवा–पीढ़ी के मानस में उमड़ते–घुमड़ते आक्रोश ने सपाट बयानी का पल्ला पकड़ा और देखते–देखते इतिहास की नयी शक्तियों से प्रेरित और आन्दोलित मानसिकता ने सृजन में नए काव्य–मुहावरे की तलाश का जोरदार अभियान चलाया। नतीजा यह हुआ कि इस रचनाशीलता की नयी कविता से अलग पहचान बनने लगी। नई चिन्ताओं–संघर्षों की मनोभूमिका से युक्त इस साठोत्तरी कविता को नया नाम दिया गया–'समकालीन कविता'। कहना न होगा कि यह नाम बिना भारी विरोध या वाद–विवाद के प्रचलित हो गया। अपने आस–पास के पूरे परिवेश को चौकन्नेपन के साथ रचने–पकड़ने के कारण इस कविता को ''समकालीन कविता'' का नाम देना उचित समझा गया।

19.2 समकालीन कविताः स्वरूप और दृष्टि

समकालीन काव्य–सृजन को ''समकालीन कविता'' नाम तो दे दिया गया और यह पर्याप्त या अपर्याप्त नाम प्रचलन में आ गया है। लेक़िन आज यह बात उठ रही है कि समकालीन कविता की अन्तिम सीमा कब तक? इस तरह के महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठने का बुनियादी कारण यह है कि इस काव्य सृजन के भीतर हिन्दी कविता की कई काव्य पीढ़ियाँ सृजन–कर्म में एक साथ सक्रिय दिखाई देती हैं। इस काव्य सृजन में अनेक धाराएँ हैं, अनेक काव्य शैलियाँ हैं – अनेक तरह के छोटे बड़े काव्य आन्दोलन हैं – उनकी अलग–अलग तरह की काव्य–ध्वनियाँ और काव्य प्रवृत्तियाँ हैं। इन सभी को कब तक ''समकालीन कविता'' जैसे नाम के अतिव्यापकत्व में समेटा जाता रहेगा? इधर ''समकालीन कविता'' को ''नयी कविता'' के बाद की ''विद्रोही कविता'' भी कहा गया है। काल–चेतना के प्रति सजग अलोचक ''समकालीन कविता'' को ''साठोत्तरी कविता'' कहना अधिक संगत मानते हैं। ऐसे भी आलोचक हैं जो संवेदना और शिल्प की दृष्टि से समकालीन कविता को ''सम्पूर्ण परिवेश के यथार्थ'' की कविता कहना उचित समझते हैं। इस काव्य सृजन के प्रवाह और परिवर्तन को दशकों में बाँटकर स्पष्ट करने का प्रयत्न करते हैं–साठोत्तरी कविता, सत्तरोत्तरी कविता, अस्सी के बाद की कविता। यह बात भी मान ली गई है कि सृजन युग तो परम्परा और आधुनिकता, निरन्तरता और परिवर्तन की प्रक्रिया के परिणाम होते हैं। जीवन–जगत का यथार्थ भी स्थिर नहीं गतिशील होता है और सृजन–चेतना बासी या जड़ीभूत सौन्दर्याभिरुचियों पर प्रहार करती हुई विकसित होती रहती है। फिर सृजन–व्यापार तो ऐतिहासिक–सांस्कृतिक प्रक्रिया का एक संश्लिष्ट व्यापार है जिसमें प्राचीन और नवीन निरन्तर टकराते हुए चलते हैं। सृजन की प्रकृति ही ऐसी है कि वह परिचित को नया और अपरिचित को परिचित बनाते हुए नया सृजन सौन्दर्य उत्पन्न करता है। समकालीन कविता का दावा है कि वह न तो भावोवेग है न कल्पना का अतार्किक विस्तार। वह तो जीवन जगत के व्यापार, अनुभवों के सच्चे और ठोस आधारों को अपनाती है। इसलिए वह यथार्थ के भीतरी–बाहरी, जिए–भोगे गहरे आत्म–संघर्षो–तनावों–दबावों से विवश होकर रची जाती है। जीवन जगत की कठोर स्थितियों –परिस्थितियों का प्रभाव–दबाव समकालीन कविता में इतना अधिक बढ़ गया है कि कवि स्वयं ही जूझकर लहू–लुहान है। उसकी कविता खुद से, अपने परिवेश से मुठभेड़ करती कविता है। व्यापक–अर्थों में कहा जा सकता है कि परिवेश ही इस काव्य सृजन की मूल प्रेरणा है। यहाँ महामानव और लघुमानव की बहस को समाप्त करता हुआ मामूली आदमी या सामान्य मानव कविता के केंद्र में आ गया है। इसलिए इस सृजनकर्म में परिस्थितियों के घात–प्रतिघात से बदलती राजनीतिक–सांस्कृतिक, आर्थिक–नैतिक संवेदना पर ध्यान को केंद्रित करना पड़ता है। इस सृजन का कोई काव्यशास्त्र अभी निर्मित नहीं हुआ है और पुराने प्रतिमानों से इसे समझा नहीं जा सकता। दरअसल, समकालीन कविता को जीवन–जगत के यथार्थ की खुली अभिव्यक्ति के कारण सूत्ररुप में परिभाषित नहीं किया जा सकता। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि समकालीन कविता अपने परिवेशगत यथार्थ की व्यापक अभिव्यक्ति है। नेहरू–युग के बाद की राजनीतिक विकृतियों, विद्रूपताओं, जीवन के हर क्षेत्र में विघटित टूटते मूल्यों, पीड़ाओं–कुंठाओं, मरते स्वप्नों और विक्षोभों ने इस काव्य–सृजन की अनुभूतियों–संवेदनाओं–अनुभव–पुंजों में अभिव्यक्ति पाई है। यह काव्य–सृजन युग की पीड़ाओं–चिन्ताओं से साक्षात्कार कराता हुआ हमें विकल–बेचैन कर देता है। सोचने–विचारने को विवश करता है। विद्रोह–विक्षोभ–असन्तोष से जन्मी यह कविता मामूली आदमी की व्यथा–कथा का इतिहास है। किंतु यह समझना भूल होगी कि समकालीन कविता परिचय के अस्तित्ववादी काव्य–मुहावरे की अभिव्यक्ति है। निराशा, अवसाद, क्रोध–झुंझलाहट, मूल्य–विहीनता की कविता होने पर भी यह

अनास्थावाद की कविता नहीं है। अपनी दिशा और दृष्टि में यह नयी पीढ़ी या आजादी के बाद पैदा हुई पीढ़ी की संघर्ष गाथाओं से भरी जीवट की कविता है।

समकालीन कविता में नयी –पुरानी पीढ़ी के सभी कवि एक साथ, एक स्वर से सत्ता–विरोध की कविताएँ रचते हैं जिनमें राजनीतिक विकृतियों से उत्पन्न नरक का गहराई से अहसास कराने वाली चेतना प्रबल है। राजनीतिक–सांस्कृतिक चिन्ताओं–पीड़ाओं की चीख–पुकार का स्वर इतना तगड़ा है कि काव्य–सृजन, चीख–चिल्लाहट, गुर्राहट–विद्रोह की अर्थ ध्वनियों से कोलाहलमय सुनाई देता है। यहाँ नयी कविता का व्यक्ति–स्वातंत्र्यवाला, शीत–युद्ध की वेदनावाला संसार गायब हो जाता है और पूरी कविता राजनीतिक, सांस्कृतिक संकटों के समूचे बोध से भर जाती है। नेहरू–युग की राजनीति ने जीवन के सभी मूल्यों को इतना मलिन–खोखला और धूमिल कर दिया था कि समकालीन कविता के प्रवर्तक कवि सुदामा पाण्डे ने अपना नाम ही "धूमिल" रख लिया। इस कवि ने बहुत गहरे में यह अनुभव किया कि समकालीन भारतीय प्रजातंत्र के नरक को कवि अपना नाम धूमिल रखकर ही उजागर कर सकता है –हर स्तर पर जन–जन की आकांक्षाओं–आस्थाओं को धूमिल करता प्रजातंत्र। जिसमें "प्रजा" और "तन्त्र" दोनों की शक्ति का खुला दुरुपयोग किया गया है। कवि धूमिल ने "संसद से सड़क तक" काव्य संग्रह की लम्बी–कविता "मोचीराम" में कहा – "मेरे लिए हर आदमी एक जोड़ी जूता है। जो मरम्मत के लिए खड़ा है।" इस जूते की तरह बेहाल आदमी को ठीक कैसे किया जा सके यही कवि धूमिल की बुनियादी काव्य–चिन्ता है। हमारे समय के राजनीतिक नरक में मामूली आदमी के डूबते–मरते वर्तमान को ये सभी कविताएँ नयी भाषा देती हैं।

वास्तव में, समकालीन कविता का भाव–बोध, आक्रोश, विक्षोभ और विद्रोही मनः स्थितियों से निर्मित हुआ है। मानवीय पीड़ाओं यातनाओं की निर्भय अभिव्यक्ति के लिए इस भाव बोध ने अनेक तीखे संघर्षों और विरोधी आघातों को पाटकर अपनी विद्रोहमूलक काव्य सत्ता को स्थापित किया है। कवि अब संकेतों– व्यंजनाओं की शिष्टताओं को अंगूठा दिखाकर सीधी धारदार कटखनी भाषा में अन्तर्वस्तु को रूप देता है। धूमिल से लेकर अरुणकमल तक युवाकवियों का काव्य–स्वभाव और काव्य–संवेदना का स्वरूप इतना बदल गया है कि काव्य–स्थिति का अहसास काव्य–पाठक के मानस में दर्द के धमाके करता है – ज्वालामुखी स्फोट सी भीषण स्थिति यहाँ विद्यमान मिलती है। कवि भावुकतापूर्ण मध्ययुगीन मूल्य दृष्टि, आदर्शमूलक सांस्कृतिक मूल्य चेतना, पवित्रतामूलक मिथक–प्रतीक–बिंब, झूठे उदारतावाद, छलिया करुणावाद, सहानुभूति के दाँत दिखाते मानववाद–मानवतावाद से पूरी तरह अपना सम्बन्ध तोड़ लेता है। उसकी आस्था न वाद में है, न दर्शन में, न धर्म में, न राजनीति में, न धर्मनिरपेक्षतावादी नाटक में। केवल उसकी आस्था उस मानव में है जो जीने के लिए चौतरफा लड़ाई लड़ रहा है श्रमरत कर्मरत मानव।

19.3 नयी कविता की रूढ़ियों से नए काव्य-सृजन में मुक्ति का प्रयास

नयी कविता की रूढ़िवादिता से मुक्ति पाने के लिए नयी पीढ़ी के कवियों विशेषकर धूमिल, लीलाधर जगूड़ी, राजकमल चौधरी, विनोदकुमार शुक्ल, केदारनाथ सिंह, अशोक वाजपेयी ने काव्य की परिपाटी बद्धता से विद्रोह करते हुए नवीन काव्य–दिशाओं की खोज आरम्भ की। समकालीन कविता में नयी–काव्य दिशाओं की खोज विभिन्न लघु पत्रिकाओं और काव्य–आंदोलनों के माध्यम से आरम्भ हुई। नयी कविता की स्वीकृत परिपाटी से हटकर ही अस्वीकृत कविता, निषेधवादी कविता, अकविता पर बहस केंद्रित लघुपत्रिकाओं की बाढ़ सी आ गई। इन्हीं लघुपत्रिकाओं ने विभिन्न काव्य आन्दोलनों के प्रस्ताव प्रस्तुत किए। आश्चर्यजनक बात यह है कि हिन्दी कविता में इतने अधिक काव्य आंदोलनों के प्रस्ताव पहली बार आए। सातवें दशक के इन काव्य–आंदोलनों की एक संक्षिप्त सूची इस अभूतपूर्व काव्य–स्थिति का संकेत देती है– अकविता, अन्यथावादी कविता, विद्रोही कविता, सनातन सूर्योदयी कविता, सीमान्तक कविता, अभिनव कविता, अधुनातन कविता, निर्दिशायामी कविता, एब्सर्ड या ऊलजलूल कविता, नवप्रगतिवादी कविता, साम्प्रतिक कविता, ठोस या क्रांकीट कविता, कोलाज–पोस्टर कविता, ताजी कविता, श्मशानी कविता, विचार कविता, प्रहार कविता; अगीत कविता, आदि काव्य आन्दोलन। सातवें दशक में लघु पत्रिकाओं के माध्यम से प्रस्तावित ये सभी काव्य आन्दोलन बरसाती घास की तरह फूटे और समाप्त हो

गए। किसी–किसी पत्रिका का तो काव्य आंदोलन को लेकर एक अंक ही निकला। सच इतना ही है कि इन काव्य आंदोलनों ने एक नए काव्य परिवेश को निर्मित किया और इस माहौल ने मुक्त मानसिकता से हमें परिचित भी कराया। इन आंदोलनों की प्रेरणा, शक्ति और सीमाएँ आज भी काव्य सजग पाठक को सोचने पर विवश करती हैं कि युवा मानस नई चिन्ताओं तनावों–संघर्षों को सर्जनात्मकता में कैसे व्यक्त कर रहा था !

प्रश्न उठता है कि इतनी अधिक संख्या में लघु–पत्रिकाओं के प्रकाशन के बुनियादी कारण क्या थे? इसका एक मोटा उत्तर यह है कि शिक्षा के प्रसार से युवा–पीढ़ी में राजनीतिक, आर्थिक और साहित्यिक जागृति आई। नेहरू–युग की नीतियों से हताश जन–मानस ने मार्क्सवाद– लोहियावादी समाजवाद की विचारधाराओं को व्यापक स्तर पर ग्रहण किया। नववामपंथी रूझानों वाले युवक, पूँजीवाद, व्यक्तिवाद, क्षणवाद, गाँधी वाद, अतियर्थाथवाद, विनोबा के सर्वोदयवाद से चिढ़कर उनसे दूर होते गए। नक्सलवादी, फासिस्टवादी, शीतयुद्धवादी, उपनिवेशवादी– साम्राज्यवादी, भाववादी विचारधाराओं के खिलाफ शिक्षित युवा–मानस ने विद्रोह और बगावत की वैचारिक मुद्रा अख्तियार कर ली। नक्सलपंथी, अत्यधिक गरमविचारों के मार्क्सवादी–लेनिनवादी, माओवादी तथा जयप्रकाश नारायण की लोक क्रांतिवादी समाजवाद विचारधारा वाले युवक दल सामने आए जो जेल, गोली और मौत से नहीं डरे। आर्थिक पराधीनता और बेरोजगारी से मुक्ति पाने के लिए संघर्ष को तेज किया गया। युवकों ने यह भी देखा कि चीन और पाकिस्तान के युद्धों में सोवियत मित्रता प्रगाढ़ हुई और अमेरिका के पूँजीवाद प्रपंच से हम सावधान हुए। लेकिन एक दौर ऐसा आया कि सोवियत संघ अपने ही अन्तर्विरोधों से बिखर गया और मार्क्सवादी विचारधारा भटक गई। नव पूँजीवादी शक्तियों ने अमेरिका की अगुआई को स्वीकार करते हुए तीसरी दुनिया के देशों पर अपना वर्चस्व स्थापित किया । फलतः पूरे विश्व में एक उत्तर–आधुनिकतावादी (पोस्ट मार्डनिज्म) परिदृश्य अपस्थित हुआ। भारत ने भी पश्चिमी बाजारवाद, नव्य–साम्राज्यवादी नीतियों के लिए अपने दरवाजे खोल दिए। उदारीकरण और विश्वयारी के चक्कर में "ग्लोबल मैन" "ग्लोबल विलेज" और "ग्लोबलाइजेशन" के मोह और भ्रामक स्वर तीव्र हुए। नव्य साम्राज्यवाद–नव्य उपनिवेशवाद के "उत्तर–आधुनिकतावादी" परिदृश्य ने पुरानी सभी विचारधाराओं को अप्रासंगिक निरर्थक घोषित कर दिया। उत्तर आधुनिकतावादियों के अनुसार इतिहास परम्परा की पुरानी भूमिकाओं का अन्त हो चुका है। मनुष्य से संबंधित सभी सरोकार अब अपनी केंद्रीयता खो चुके हैं इसका कारण है विचारधाराओं के केंद्रवाद को तोड़ना।

नव्य पूँजीवाद "लेट कैपीटलिज्म" की नव तकनीकी क्रांति ने बड़े पैमाने के उत्पादन को संभव बनाया। इसी ने नई उपभोक्तावादी संस्कृति को जन्म दिया। इस उपभोक्तावादी संस्कृति की चपेट में भारत भी आया और इसी से एक अपसंस्कृति का जन्म हुआ। इस प्रकार विकसित देशों ने अविकसित देशों का पूरा नक्शा बदल डाला। यह काम बहुराष्ट्रीय निगमों और सरकारों ने किया। बाजारवाद की मुक्त संस्कृति ने प्रबंधकों–वितरकों और बिचौलियों को व्यापारिक पूँजीवाद में नया लूटतन्त्र स्थापित करने का अवसर दिया। इससे मनुष्य के अन्तर्जगत का महासंहार हुआ और कविता के अन्त की घोषणा की गई। समकालीन परिस्थिति का यह उत्तर आधुनिक भाष्य सर्जनात्मकता को लील गया। इस अंधकारपूर्ण स्थिति के बीच सन् 80 के दशक में "कविता की वापिसी" का नारा बुलन्द किया गया और कहा गया कि उत्तर औपनिवेशिक पूँजीवाद अमनुष्यता का सैद्धान्तीकरण अनुचित है तथा यह सब हमारी सर्जनात्मकता का अन्त नहीं कर सकता है। पर "मास कल्चर" के लंपट–परिदृश्य ने नवजागरण और राष्ट्रीय आन्दोलन की मूल्य–चेतना का गला घोंटकर भयावह–आतंक यातना को जन्म दिया। समकालीन काव्य सृजन पर इस स्थिति का सीधा प्रभाव–दबाव है। उपभोक्तावादी संस्कृति ने "सांस्कृतिक जागरण" की चेतना को ध्वस्त करते हुए एक विराट विखण्डनवाद को जन्म दिया। इसी में से जातिवाद, सम्प्रदायवाद, प्रदेशवाद का जहर राजनीति में आया और पूरे देश को तोड़–फोड़ की घटिया और मानवद्रोही राजनीति के हाथों तबाह कर दिया। इसी तबाही को **केदारनाथ सिंह** ने "उत्तर कबीर तथा अन्य कविताएँ" तथा "बाघ" जैसे काव्य–संग्रहों की कविताओं में उजागर किया है। उत्तर–आधुनिकतावादी स्थितियाँ हमारी जातीय–स्मृति को मिटाने का हर संभव यत्न कर रही हैं। इस समूची पृष्ठभूमि ने समकालीन काव्य सृजन को एक बिल्कुल भिन्न परिस्थिति के हवाले कर दिया है। हालत यह है कि जटिल होती संवेदना और कठिन होते कवि कर्म ने "काव्यात्मकता" का अर्थ ही तहस–नहस कर दिया है। कवि के सामने प्रमुख प्रश्न आशावाद और निराशावाद का नहीं है अपितु जीवन को भीतर बाहर से पहचानने का है।

अमानवीय राजनीति के प्रमुख कवि **रघुवीर सहाय** के काव्य संग्रह **''आत्महत्या के विरुद्ध''** की कविताओं में इसी मानवीय अर्थ के संकल्प बीजों को पाया जा सकता है।

समकालीन कविता पर नितांत समसामयिकता और तात्कालिकता का गहरा आतंक राजनीति के नरक के भीतर से फूटकर फैला है। इसी आतंक ने आक्रोश–विक्षोभ और विद्रोह की काव्य भंगिमाएँ पैदा की हैं। यही कारण है कि यह कविता अपने समय, समाज, और राजनीति का सच्चा साक्ष्य है जिसमें ''नंगापन/अंधापन होने के खिलाफ़ एक सख्त कार्यवाही है'' (धूमिल – संसद से सड़क तक) और आदमी

> ''वह चाहे जो है जैसा है जहाँ कहीं है
> आजकल
> कोई आदमी जूते की नाप से
> बाहर नहीं है''

समकालीन कविता के काव्य–मुहावरे को **मलयज** नयी ताकत देते हैं। मलयज के काव्य संग्रह का शीर्षक अपनाकर कहें तो राजनीति मामूली आदमी के ''जख्म पर धूल'' डालने के सिवा और कुछ नहीं कर सकी है। राजनीति ने एक पूरी पीढ़ी के साथ दगा किया है, रघुवीर सहाय के शब्दों में ''एक पीढ़ी पराई हो गई अपने ही देश में''। राजनीति के समाजवादी ढोंग, भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद, धर्म का दुरुपयोग, संसदीय प्रणाली का माखौल, बुद्धिजीवियों की कायरता, चरित्र–हीनता, चापलूसों की भीड़, लोकतंत्र के नाम पर गुंडातंत्र, भारतीय संस्कृति के नाम पर छल–छंद सभी पर समकालीन कवियों ने खुलकर लिखा है।

19.4 समकालीन कविता और राजनीति का परिदृश्य

समकालीन कविता अपने गहरे अर्थ में राजनीतिक कविता है। कविता के साथ राजनीति का रिश्ता पुराना है। लेकिन कविता के इस दौर में राजनीति केन्द्रीय स्थिति पा जाती है। केन्द्रीय स्थिति पाकर राजनीति अपने क्रूर, नंगे अमानवीय रूपों में जीवन के हर क्षेत्रों में सक्रिय हुई। यहाँ तक कि धर्म तक को राजनीति ने भ्रष्ट करने से नहीं छोड़ा। आपातकाल की राजनीति ने जनता को तबाह किया और इन्दिरा–युग की इस करतूत पर **नागार्जुन** तथा **भवानीप्रसाद मिश्र** जैसे पुराने कवियों ने डटकर लिखा। नागार्जुन ने लिखा –

> ''हरिजन गिरिजन नंगे भूखे हम तो डोलें वन में
> खुद तुम रेशम साड़ी डाँटे उड़ती फिरो गगन में
> महंगाई की सूर्पनखा को ऐसे पाल रही हो
> शासन का गोबर जनता के सिर पर डाल रही हो।''

निरन्तर बढ़ती महँगाई ने गरीबी–भुखमरी से आम आदमी के आत्म–निर्वासन की प्रक्रिया को तेज कर दिया। जातिवाद, साम्प्रदायिकता, झगड़े, पिछड़े का खतरनाक विभाजन, राजनीति में अपराधीकरण का वर्चस्व, धर्म के राजनीतिकरण से पूरा देश तबाही की ओर बढ़ा। गांधी का स्वदेशी आन्दोलन अमेरिकी कर्ज पर चलने वाली सरकारों ने निगल लिया और देश एक नए ढंग की पराधीनता में पुनः फँसने लगा। नकलची, उधारभोगी उपभोक्तावादी संस्कृति ने सभी मूल्यों को चौपट कर दिया और क्रान्ति के नाम पर यौनक्रान्ति को बढ़ावा मिला। अकविता आन्दोलन के सभी कवियों ने (जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार, राजकमल चौधरी, सौमित्र मोहन आदि) यौनक्रान्ति को रचनाशीलता में स्थान दिया। नैतिक रूप से पतित व्यवस्था ने ''सेक्स, अपराध और हिंसा'' को सत्ता में रहने का साधन बना लिया। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद पैदा हुई पीढ़ी ने चार–पाँच चुनावों के माहौल को देखा और अनुभव किया कि सिद्धान्तहीन राजनीति उसका और उसके समाज का संहार कर रही है। फलतः इस पीढ़ी के पल–पल कठिन संघर्षों में तीव्रता आई। सौमित्र मोहन 'लुकमान अली' नामक लंबी कविता में जनता के इस दर्द को लिखते हैं–

"लुकमान अली के लिए स्वतंत्रता उसके कद से केवल तीन इंच बड़ी है।
वह बनियान की जगह तिरंगा पहनकर कलाबाजियाँ खाता है।
वह चाहता है कि पाँचवें आम चुनाव में बौनों का प्रतिनिधित्व करे।
उन्हें टाफियाँ बाँटे।
जाति और भाषा की उन्हें कसमें खिलाए
वह आज, नहीं कल, नहीं तो परसों, नहीं तो किसी दिन
फ्रिज में बैठकर शास्त्रों का पाठ करेगा।"

पंचवर्षीय योजनाएँ, हरित क्रान्ति, गरीबी हटाओ जनसंख्या नियंत्रण की योजनाएँ मानवाधिकार और जनविकास की सभी योजनाएँ कोरी मायावी छलनाएँ सिद्ध हुई। समकालीन कविता के कवि मलयज ने ठीक कहा है कि "इस युग के सिद्धान्तहीन राजनीति के इस अनुभव की नेहरू–युग की राजनीति से तुलना कीजिए। नेहरू–युग की राजनीति "भारत की खोज" के आधार प्रर आशावाद से ग्रस्त एक ऐसी राजनीति थी जिसके पैर यथार्थ पर कम स्वर्णिम मानव–भविष्य के स्वप्न पर अधिक टिके थे। ऐसी आदर्शवादी राजनीति का अंत यदि मोहभंग में हो तो कोई आश्चर्य नहीं। यह राजनीति मुख्यतः राजनेताओं की राजनीति के कारण हुए मोहभंग में भी एक ट्रेजिकशान थी। नेहरू–युग का साहित्य इसी शानदार मोहभंग का साहित्य है। इसके विपरीत नेहरू–युग के बाद की राजनीति आम आदमी की राजनीति है। छात्र–असंतोष, घेराव और दलबदल में आम आदमी की ही नस बजती है। जिस राजनीति के अन्तर्गत न्यूनतम कार्यक्रम का झंडा, पार्टी सिद्धान्तों के चिथड़े को सिलकर बनाया गया हो, वहाँ मोहभंग की कोई गुंजाइश रह ही नहीं जाती। आम आदमी की राजनीति स्थिति के इस कटु स्वीकार से ही शुरू होती है। पिछले दशकों का साहित्य बुनियादी तौर पर इस स्थिति के इस कटु स्वीकार और उससे उत्पन्न प्रतिक्रियाओं का साहित्य रहा है।" (कविता से साक्षात्कार, पृष्ठ–165) "स्वाधीन चिन्तन", "स्वाधीन मनुष्य" और स्वाधीनता का स्वप्न आकाश कुसुम बनता गया। हमने अन्धेपन में अपने देश की स्थिति परिस्थिति पर विचार किए बिना पश्चिमी "विकास" (प्रोग्रेस) और "प्रगति" (डेवलेपमेंट) की अवधारणाओं को स्वीकार कर लिया। फलतः अपने मौलिक सोच से कटकर हम भटकाव के शिकार होते गए। यह भटकाव इतना बढ़ा कि एक पूरी पीढ़ी भ्रान्तियों में फँसकर गर्क हो गई। पूरी पीढ़ी में एक ऐसा अकेलापन, आत्मनिर्वासन पनपा कि वह सोचने–समझने में लाचार हो गई। **विजयदेवनारायण साही** के शब्दों में कहें तो हमारे हाथों में टूटी हुई तलवारों की मूठें रह गईं जिनसे हम युद्ध तो क्या कर सकते थे अपनी ट्रेजेडी का मातम ही मना सकते थे। **मुक्तिबोध** ने "ब्रह्मराक्षस" कविता में इसी स्थिति का समग्र बिंब खींचते हुए कहा है–

पिस गया वह भीतरी
औ बाहरी दो कठिन पाटों के बीच
ऐसी ट्रेजेडी है नीच"

गति और संत्रास एक ही जीवन–चक्की के दो पाट हैं – इसी चक्की ने पूरी पीढ़ी को पीस डाला है। पाकिस्तान, चीन युद्धों के दौरान, आपातकाल (1975) के दौरान, लोकनायक जयप्रकाश नारायण की लोकक्रांति के दौरान, देश का पूरा जीवन संकटपूर्ण उथल–पुथल से गुजरा। देश पर भाषा की राजनीति का विकृत चेहरा थोपा गया तथा हिन्दी और भारतीय भाषाओं की छाती पर अंग्रेजी को अनन्तकाल तक के लिए बैठा दिया गया। भाषायी साम्राज्यवाद की यह भयावह स्थिति ही थी जिसने भारतीय भाषाओं के रचनाकारों के आत्मसम्मान तक को छीन लिया। शिक्षा–नीति ने अंग्रेजी माध्यम की दृढ़ता से स्थापना कर दी। हिन्दी में एक अनुवादजीवी संस्कृति का जन्म हुआ जो अपने मौलिक चिन्तन के बुनियादी सरोकारों से कटती गई। यहाँ अनुवाद जीवी संस्कृति का अर्थ है अपने मूल को गँवाकर पराई भाषा, पराये विचार पर निर्भरता। अपने चिन्तन की मूलगामी बुनियादों से विच्छिन्न हो जाने के कारण हिन्दी प्रदेशों में वैचारिक आन्दोलन नहीं उठा। केवल मन्दिर–मस्जिद की सत्यानाशी राजनीति ने अलगाववाद, धर्मवादी घृणा–भाव के बीज बोए और "हिन्दुत्व" की राजनीति ने देश में साम्प्रदायिकता को खुलकर खेलने का अवसर दिया। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के नाम पर पनपा क्या – फासिस्टवाद। जीवन को हर स्तर पर झूठ, पाखण्ड, छलकपट, चरित्रहीनता, भ्रष्टाचार से पाट दिया गया। समकालीन कविता सर्जनात्मक स्तर पर इस पूरे "परिवेश" से साक्षात्कार की कविता है। रघुवीर सहाय ने इसी स्थिति की पीड़ा से भरकर लिखा –

"बीस वर्ष
खो गए भरमे उपदेश में
एक पीढ़ी जन्मी पली–पुसी क्लेश में
बेगानी हो गई अपने ही देश में" (आत्महत्या के विरुद्ध, पृ.–18)

रघुवीर सहाय ने मानवीय चिन्ताओं से भरी राजनीतिक कविताएँ इस दौर में सर्वाधिक लिखी हैं। यह प्रश्न भी उठाया गया कि क्यों हमारे विश्वविद्यालय बंजरपन के शिकार हुए और क्यों साहित्यिक संस्थाएँ दुकानें बनकर रह गई। क्यों कविता में "जीभ और जाँघ" का चालू मुहावरा प्रबल हो गया और क्यों नारी देह पूरी पवित्रता खोकर "भोग" रह गई। क्यों "भारतीयता" बेहद थका सताया शब्द रह गया। क्यों अमृतसर के मन्दिर में सेनाएँ घुसीं और हत्याओं का दौर चला। क्यों राजनीति हत्यारों के हाथों चली गई। कहना न होगा कि यह "क्यों" इस सृजन में हर जगह मौजूद है। आज यह पूरा सृजन समाजवादी लोकतंत्र की पूरी पोल खोल कर रख देता है। इसी स्थिति ने इस सृजन में मामूली आदमी को भी ठोस स्थिति में नहीं रहने दिया। उसे पिघलाकर दबाकर "अमूर्त आदमी" में बदल दिया है।

19.5 समकालीनता, तात्कालिकता और परम्परा

समकालीन कविता मात्र साम्प्रतिक कविता का पर्याय नहीं है। यहाँ समकालीन का अर्थ है सन् 60 के बाद की कविता। इस संदर्भ में "समकालीन" शब्द को "समसामयिक" के पर्याय के रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता क्योंकि अगर ऐसा अर्थ लिया जाए तो प्रत्येक समय की कविता अपने समय में "समसामयिक" रही है। समकालीन कविता अपने समय, समाज और राजनीति से अनेक स्तरों पर गहराई से जुड़ी कविता है यह अलग बात है। इसी तरह समकालीन से तात्कालिकता का अर्थ भी ग्रहण नहीं किया जा सकता। इधर नागार्जुन, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा की कविताओं में तात्कालिक स्थिति की कविताएँ बहुत हैं और यह हमारे वर्तमान को सीधे प्रसंगों, घटनाओं से जोड़कर सामने लाती हैं। ऐसी स्थिति में तात्कालिकता का अर्थ है कि ये कविताएँ काल चेतना (समय) को पहले की कविता की तुलना में ज्यादा सजगता, प्रखरता और चौकन्नेपन के साथ अभिव्यक्ति देती हैं। इसी सतर्कता के कारण समकालीन कविता अपने समय में प्रमुख तनावों, द्वन्द्वों–अन्तर्विरोधों, विरोधाभासों, संघर्षों और विकृत विसंगत विसंगतियों की कविता है। कवि को पता है कि कष्ट–यातना और शोषण का रूप क्या है और क्यों है उन विशेष कारणों का यह कविता संकेत देती है। कवि अपने इन जीवनानुभवों को काव्यानुभूति में रचता है। वह "कल्पित" के लिए संघर्ष नहीं करता। मामूली आदमी की यातना को वाणी देता है। फलतः यह कविता "जो हो रहा है" उसका खुलासा है। यह लड़ते–झगड़ते–तड़पते–बौखलाते, चीखते–चिल्लाते आदमी के दर्द की कविता है। अपने अनुभव–चरित्र में यह आघातों–सूचनाओं के विस्फोटों की ब्यौरेवार विवरण देती कविता है। यहाँ छायावादी कोमल भाव नहीं है – विचार की खुरदरी काली स्याह भयानक चट्टानें हैं जिनके भीतर से व्यंग्य–उपहास, हाय–हत्या–आतंक, राजनीति की सड़ांध से भरा नरक–जल बहता है। मूलतः यह अपने पूरे परिवेश से मुठभेड़ करते आदमी की कविता है। इस प्रकार से यह नयी कविता की परंपरा का नवीन अर्थविस्तार है। कवि ने परंपरा की लीकों को छोड़कर मौलिक ढंग से लोकचिन्ताओं प्रश्नाकुलताओं के स्वर को बढ़ाया है। अज्ञेय और मुक्तिबोध का मार्ग इस कविता ने छोड़ा नहीं है। उसे मोड़कर फिर से नई राहों की तलाश की है। इस सृजन में एक विद्रोही मानव मूर्ति उभरती है जो नक्सलवाद की ओर जाती है और जिसमें गौरिल्ला युद्ध की छापामार मनःस्थितियों का विस्फोट है। इसमें "सशस्त्र राजनीति" और "सशस्त्र क्रांति" का अरमान प्रबल है। इन कवियों के आदर्श जयप्रकाश नारायण, चेगुपेनारा, माओ, मार्क्स–लेनिन, कोहिन–वेंदो हैं। नक्सलवादी आन्दोलन, मार्क्सवादी दलों की प्रतिबद्ध कविताओं–जनवादी कविता की क्रांतिकारिता का इस सृजन में तूफान आया मिलता है। यह कविता पुराने सामन्तवादी, साम्राज्यवादी ढाँचे को ढहाने की आवाज उठाती है और लोकतंत्र के अधिनायकवादी मुखौटे की खुलकर निन्दा करती है। कवि जानता है कि लोकतंत्र में स्वतंत्रता का अर्थ अवसरवादी स्वार्थपरता बन गया है। हम एक बार फिर "लुकमान अली" का उदाहरण लेते हैं।

"लुकमान अली के लिए स्वतंत्रता उसके कद से केवल तीन इंच बड़ी है।
वह बनियान की जगह तिरंगा पहनकर कलाबाजियाँ खाता है।
वह चाहता है कि पाँचवे आम चुनाव में वह बौनों का प्रतिनिधित्व करे।
उन्हें टॉफियाँ बाँटे।
जाति और भाषा की उन्हें कसमें खिलाए।"

जाहिर है कि आज के बाद की विद्रूपता विसंगति ही समकालीन कविता की केंद्रीय संवेदना रही है।

19.6 समकालीन कविता में आधुनिकता का अर्थ-सन्दर्भ

धूमिल, श्रीकांत वर्मा, केदारनाथ सिंह, लीलाधर जगूड़ी, रघुवीर सहाय से लेकर युवा कवि उदय प्रकाश, अरुण कमल का सृजन कर्म साक्षी है कि इस सृजन में आधुनिकता एक थकी हुई दृष्टि का पर्याय है। एक केन्द्र विहीन उत्तर आधुनिक परिदृश्य इस सृजन में उमड़–घुमड़ रहा है। यहाँ आधुनिकता का उत्तर आधुनिकता में समाहित हो जाने से उसका अर्थ बना है – पश्चिमी तकनीकी क्रांति और पश्चिम की नकल या पश्चिमी उपभोक्तावादी संस्कृति की सीधी स्वीकृति। जिसमें मूल आदमी गायब है। केवल एक उपभोक्तावादी समाज है जिसमें "उपभोक्ता" ही सब कुछ है। कवि यह सूचना देने वाला भर रह गया है कि विश्व पूँजीवादी व्यवस्था में टेक्नालॉजी का पूरा लाभ उन्हीं को मिलता है जो बाजार के मालिक हैं। इसी आधुनिकीकरण ने आत्म–परायेपन (Self-Alienation) और अवमानवीयकरण (Dehumanization) को जन्म दिया है। हिन्दी की समकालीन कविता में धूमिल, राजकमल चौधरी, श्रीकान्त वर्मा, रघुवीर सहाय की कविताएँ इसी परिदृश्य का प्रामाणिक दस्तावेज हैं। धूमिल ने "संसद से सड़क तक" काव्य संग्रह की कविता "पटकथा" में कहा है :

"दरअसल अपने यहाँ प्रजातंत्र
एक ऐसा तमाशा है
जिसकी जान
मदारी की भाषा है

****

अपने यहाँ संसद
तेल की वह घानी है
और जिसमें आधा तेल आधा पानी है।"

समकालीन सभी कवियों ने "संस्कृति", "स्वतंत्रता", "संसद", "आस्था", "शांति", "भाषा", "कानून", "जनतंत्र", "त्याग", "मनुष्यता", "झंडा" आदि शब्दों की अर्थवत्ता खो जाने का और इनकी अर्थ विकृति का भंडाफोड़ किया है। **"हर ईमान का एक चोर दरवाजा है"** और आदमी जीवन के इस नरक में सड़ने को विवश कर दिया गया है। ध्यान देने की बात यह है कि समकालीन यथार्थ को समझने–समझाने का ढंग सभी कवियों का अलग–अलग है। **समकालीन यथार्थ कुँवर नारायण** और **विजयदेवनारायण साही** की कविता में उस रूप में कहीं नहीं है जो **नागार्जुन** या **शमशेर** की कविता में है। **कुँवर नारायण** में समकालीन यथार्थ को रचने का ढंग शान्त और आत्मदीप्त है, **नागार्जुन** में व्यंग्यपरक और उत्तेजक। **रघुवीर** के मोहभंगपरक यथार्थ से समकालीन कविता का यथार्थ भिन्न है। समकालीन यथार्थ राजनीतिक सांस्कृतिक विकृतियों का यथार्थ है जिन्हें जीने के लिए और जिनमें जीने के लिए आदमी लाचार है जिसके दुःखते–कसकते अनुभवों की यातना को यह कविता "चीख" और "आग" में बदलकर व्यक्त करती है।

समकालीन कविता में समसामयिकता और आधुनिकता दोनों मिलकर प्रासंगिकता का रूप ग्रहण कर लेती हैं। जिसमें तात्कालिकता वाला हल्का अर्थ भी रहता है पर वह ओट में छिप जाता है। इस प्रकार

आधुनिकता का यहाँ अर्थ है – देश और काल से जीवन्त सम्बंध। समकालीन कवि का तात्कालिकता पर बढ़ता आग्रह क्या है– इतिहास से मुक्ति पाने का संघर्ष। नया कवि हर मोर्चे पर मुक्ति के लिए संघर्ष करता मिलता है।

19.7 समकालीन कविता : परिदृश्य की विशालता

नयी कविता के बाद की कविता या समकालीन कविता में एक साथ हिन्दी कविता की कई पीढ़ियों के कवि सक्रिय हैं। यह एक विशाल सृजन परिदृश्य है जिसमें अनेक धाराओं का वैचारिक कोलाहल सुनाई देता है। दिलचस्प तथ्य यह भी है कि सातवें–आठवें दशक में तीस से ज्यादा काव्य–आंदोलन प्रस्तावित किए गए किन्तु उनमें से किसी को भी एक केन्द्रीय आन्दोलन के रूप में महत्त्व नहीं मिला। जाहिर है कि यह कविता किसी भी तरह के "केन्द्रवाद" (सेन्ट्रिज्म) का निषेध करती है। किसी भी एक विचारधारा या दल का इस पर वर्चस्व नहीं है यह एक खुला हुआ जीवन–जगत् का रचना–क्षेत्र है जिसमें कवि अपने जीवनानुभव के यथार्थ को सर्जनात्मकता में नयी अंतर्वस्तु और रूप देता है। विशिष्ट अनुभव का तो बहुत कुछ 'काव्य' है – सपाट अनुभव की रचना यहाँ असली कवि–कर्म है, जिस नई चुनौती को इन सभी कवियों ने स्वीकार किया है। कवि 'सम्पूर्ण जीवन" पर रचना को एकाग्र करता है उसके किसी अंश मात्र पर नही। रघुवीर ने कहा है –

> "हम तो सारा का सारा लेंगे जीवन
> न कम न ज्यादा"

कवियों ने गद्य के चिन्तन और कविता की सघन अनुभूति को एकमेक करते हुए गद्य–कविता में बड़ी दक्षता हासिल की है। रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह, श्रीकान्त वर्मा, धूमिल–मलयज से लेकर अशोक वाजपेयी तक इस दक्षता की खुली सम्भावनाओं का विस्तार हैं। सपाट बयानी के साथ सघन बिंब–विधान की कला इनमें से ज्यादातर के पास है। ये कवि प्रेरणा निराला, अज्ञेय और मुक्तिबोध से लेते हैं। इस कविता सृजन में यह तीनों कवि अपने–अपने ढंग से मौजूद मिलते हैं। समकालीन कविता में कई धाराएँ है – जिनमें से कुछ प्रमुख धाराओं का हम उल्लेख कर रहे हैं :–

1. प्रगतिशील यथार्थ की धारा– इसमें नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, गजानन माधव मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर सिंह, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, धूमिल, मलयज, श्रीकान्त वर्मा, कुमार विमल, लीलाधर जगूड़ी, भगवत रावत, चन्द्रकान्त देवताले, अरुणकमल आदि कवियों का एक महत्वपूर्ण सृजन–प्रवाह है।

2. प्रयाग के "परिमल" मंच से जुड़े कवि– लक्ष्मीकान्त वर्मा, जगदीश गुप्त, विजयदेवनारायण साही, धर्मवीर भारती आदि का सृजन भी समकालीन कविता में विशेष भूमिका रखता है।

3. "तारसप्तक" की परम्परा के कवि गिरिजाकुमार माथुर, कुँवरनारायण, रामविलास शर्मा, केदारनाथ सिंह, नरेश मेहता, भवानी प्रसाद मिश्र, हरि नारायण व्यास आदि ने भी समकालीन जीवन को अपने काव्य–सृजन में खास ढंग से परिभाषित किया है।

4. स्वाधीनता आन्दोलन से जुड़े कवि– माखनलाल चतुर्वेदी, बाल कृष्ण शर्मा, "नवीन" आदि की राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य–धारा भी इस काल में सक्रिय रही है।

5. नवगीत आन्दोलन भी समकालीन कविता की एक विशिष्ट धारा है जिसमें ठाकुर प्रसाद सिंह, रमानाथ अवस्थी, रमेशरंजक, चन्द्रदेव सिंह, वीरेन्द्र मिश्र, शिवमंगल सिंह "सुमन", श्रीकान्त जोशी, राजेन्द्र किशोर, विजयकिशोर मानव आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

6. अकविता आन्दोलन का समकालीन कविता में एक महत्वपूर्ण हाशिया है। इसमें जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार, गंगाप्रसाद विमल, सौमित्र मोहन, मणिक मोहिनी, मोना गुलाटी और राजकमल चौधरी आदि के सृजन–कर्म की खासतौर पर चर्चा हुई है।

7. समकालीन कविता की विद्रोही धारा के कवियों में गोरख पाण्डेय, ऋतुराज, सोमदत्त, राजेश जोशी, उदय प्रकाश, मंगलेश डबराल, इब्बार रब्बी, वेणुगोपाल, मणि मधुकर, आदि अनेक महत्वपूर्ण कवि हैं।

यहाँ समकालीन कविता के सभी नाम गिनाना न तो सम्भव है और न यह उद्देश्य ही है। बहुत से नाम छूट गए हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि इन सभी धाराओं के कवियों ने समय–समाज–राजनीति की चिन्ताओं–तनावों का सृजनशीलता से सीधा रिश्ता कायम किया है। चीन–पाकिस्तान युद्ध–आतंक, आपातकाल, सेक्स–हिंसा, विचारधाराओं की दिशाहीनता, भ्रष्टाचार, मानवद्रोही राजनीति का एक ऐसा तूफान चला कि सभी मूल्य चमराकर अधमरे हो गए। इस समय के मनुष्य की हालत को परिभाषित कर पाना कठिन है क्योंकि वह यातना–विक्षोभ में पिसता दिखाई देता है। ज्ञान–विज्ञान के सभी क्षेत्रों में भारी अवमूल्यन ने निराशा को जन्म दिया। इस अवमूल्यन का असर रचनाओं की अन्तर्वस्तु और भाषा दोनों पर पड़ा। काव्य–भाषा इसी प्रभाव–दबाव के कारण गम्भीर अर्थच्छायाओं की विचारभूमि से स्खलित होकर सपाट बयानी की ओर मुड़ गई और उसने गद्य से निकटता स्थापित की। जटिल स्थितियों – मनःस्थितियों – के कारण कवि–कर्म कठिन हो गया। इन कवियों ने अपनी पूरी स्थिति से क्षुब्ध होकर नितान्त तात्कालिकता को रचना में उतारने का यत्न किया। परिणाम यह हुआ कि इनका ऐतिहासिक विवेक मूर्च्छित होता गया और भाषा जातीय–स्मृति के गहरे बोध से कटती गई। इनमें से अधिकांश को यह ध्यान तक नहीं है कि हमारी पीठ पर एक सम्पन्न और समर्थ काव्य–परम्परा का हाथ है। स्मृति भ्रंश से उपजी स्थिति के कारण ज्यादातर युवाकवि भयावह सरलीकरणों–निरर्थकताओं–चीखों–सन्त्रासों का शिकार होते गए। यातना, पीड़ा, सन्त्रास, अकेलापन समकालीन आदमी ने ही झेले हों ऐसी बात नहीं है, पहले भी आदमी कष्टों–पीड़ाओं से गुजरा है। लेकिन नये कवियों ने हमारी स्थिति को विशिष्ट स्थिति मानकर अपनी यातनाओं पर आँसू बहुत बहाए। कवि–आलोचक अशोक वाजपेयी ने इसी पूरी स्थिति को तौलकर कहा – "ऐतिहासिक विवेक को छोड़ने के नतीजे रचनात्मक और अलोचनात्मक दोनों ही स्तरों पर भयानक हुए हैं। इससे इतिहास के भार से मुक्ति इतनी नहीं मिली जितनी एक बेमानी–सी स्वतंत्रता, रचनात्मक स्तर पर भाषा के संस्कार के प्रति जागरूकता का अभाव, उसकी सांस्कृतिक जड़ों के प्रति उदासीनता आई है और अपनी पांरपरिक अनूगूँजों और अनुषंगों, कवियों के अज्ञान और अरुचि के कारण कट जाने से काव्यभाषा में, ज्यादातर युवा कवियों की काव्य भाषा में सपाटता, सतहीपन और मानवीय दरिद्रता आई।" (फिलहाल, पृष्ठ–10) समकालीन कविता में जातीय स्मृति, बौद्धिकता के क्षरण से विचार और सृजन में दरिद्रता को ढो रहा है। नयी कविता तक हिन्दी भाषी क्षेत्र में प्रखर स्वचेतना, विवेक वयस्कता, बौद्धिकता, सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ने का अरमान था – जिसे अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर, भवानीप्रसाद मिश्र, सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय, कुँवरनारायण, धर्मवीर भारती की उस दौर की कविताएँ सामने लाती हैं – वह दौर रातों रात कहाँ चला गया? इधर धूमिल, मलयज, लीलाधर जगूड़ी, श्रीकान्त वर्मा, विनोद कुमार शुक्ल, सोमदत्त, अकविता से जुड़े तमाम कवि – जगदीश चतुर्वेदी, सौमित्र मोहन आदि कवि, चीखते काव्य मुहावरे, यौन क्रांति की आवाज, दहाड़ती अबौद्धिक मुद्राएँ जो आई हैं क्या वे इन सभी के काव्य–प्रभाव को सीमित नहीं करतीं। नवगीतकारों की एक पूरी पीढ़ी भावात्मक आस्फालन की अबौद्धिक स्थितियों का शिकार क्यों है? लक्ष्मीकान्त वर्मा, जगदीश गुप्त, श्रीराम वर्मा आदि कवियों ने "उदात्त" को क्या खोया नहीं है? नववामपंथी, जनवादी विद्रोह कविताओं की नारेबाजी का अकाव्यात्मक अन्दाज पाठक को अग्राह्य क्यों है? इन सबका उत्तर एक ही है कि राजनीतिक आतंक में फँसकर कविता अपनी गहरी सांस्कृतिक जड़ों और वैचारिक स्थितियों की धुरी से उतर गई है।

यह भी कहा जा सकता है कि समकालीन कविता में गहन सांस्कृतिक बोध और अन्य तरह के वैचारिक सरोकारों के अभाव को पाकर हमें निराश नहीं होना चाहिए। छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता तक तो विचार ने सृजन को ताकत दी लेकिन इधर "उत्तर आधुनिकतावादी परिदृश्य" ने विचारधाराओं के केन्द्रवाद को तोड़कर विचारधाराओं का अन्त कर दिया, इतिहास–परम्परा का अन्त कर दिया और एक उपभोक्तावादी संस्कृति और मनुष्य को जन्म दिया जिसकी वैचारिक क्षमता को लकवा मार गया है। क्या यह कम बड़ी बात है कि समकालीन कवि अपने "परिवेश" को सृजन बनाने लगे और मामूली आदमी की

चिन्ताओं–यातनाओं का पाठक को अहसास करा सके। इन सभी ने मुक्तिबोध को बहुत आत्मीय भाव से अपनाया और उनकी कविताओं को 'गीता' मानकर आगे बढ़े। ज्यादातर युवा कवि गाँवों कस्बों से, छोटे शहरों और महानगरों में आए। इस जिन्दगी ने एक नई रूमानियत और साहसिकता को जन्म दिया। युवक–युवतियाँ सहज भाव से मिले – स्त्री–पुरुष सम्बंधों में स्वतंत्रता का अर्थ भी खुलकर सामने आया। पश्चिमी जीनकल्चर, हिप्पी कल्चर, पॉप म्यूजिक कल्चर के झटके "टीनएजर्स" ने महसूस किए। फलतः प्रेम–सेक्स की धारणाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। युवा–सृजन में "जीभ और जाँघ का भूगोल" एक पूरी सामाजिक मानसिकता को ध्वनित करता है जिसमें "सेन्सर्स" को नकारने का भाव है। जहाँ मुक्तिबोध के काव्य का नायक सत्ता के षड्यंत्रों का भंडाफोड़ करता था वहाँ समकालीन कविता का नायक अपनी यातना–चीख के गर्क में खड़ा मिलता है। समकालीन कविता में बृहत्तर सामाजिक–संघर्ष और आत्म–संघर्ष के बीच तनाव क्या ढीला पड़ा, रगड़ से पैदा होने वाली आग ही ठंडी हो गई। मामूली आदमी स्वार्थी राजनीति के हाथों ऐसे खेलता रहा कि न उसे स्वाधीनता–आन्दोलन का अर्थ पता चला, न गांधी, न सुभाष का, न लोहिया, न कार्लमार्क्स का। राजनीति ने घपले पर घपले किए और राजनीति "घपलावाद" का पर्याय बनकर भरोसे से विहीन हो गई। इस लोकतंत्र में देशभक्ति धोखा है और "चरित्र" मजाक। देश में फैले व्यापक गुंडातंत्र ने सत्ता को हथिया लिया। समकालीन कविता में इसी यथार्थ की नरक यात्राएँ हैं।

समकालीन सृजन की उपलब्धियों में रघुवीर सहाय, श्रीकान्त वर्मा, धूमिल–मलयज, विजयदेव नारायण साही, सर्वेश्वर, कुँवर नारायण, गिरिजाकुमार माथुर, विनोद कुमार शुक्ल, अशोक वाजपेयी, केदारनाथ सिंह, नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, लक्ष्मीकान्त वर्मा – नाम कहाँ तक लें–इन सभी के काव्य सृजन को लिया जा सकता है। यह सृजन अपने समय–समाज का सच्चा साक्ष्य है। रघुवीर सहाय, धूमिल और केदारनाथ सिंह का नया काव्य–मुहावरा पुरानी लीकों से हटकर है। इन सभी का सृजन हिन्दी कविता की एक उपलब्धि है। परम्परागत संस्कारों पर प्रहार करते हुए अकवितावादियों ने भी खुलापन अपनाया। राजकमल चौधरी, सौमित्र मोहन, जगदीश चतुर्वेदी का काव्य न तो पूरी तरह पश्चिम के गिंसवर्ग, नार्मल मेलर आदि बागी लेखकों की नकल है न हमारी वास्तविकता से पलायन। हाँ, इनके संघर्ष का तरीका अलग है। नववामपंथी–जनवादी रचनाकारों की सब कविताएँ "कोरी फार्मूला" नहीं है उनमें समय के घावों का दर्द सच्चा है।

समकालीन कविता की सभी धाराओं के महत्त्वपूर्ण काव्य–संग्रह इस प्रकार हैं – रघुवीर सहाय – "आत्महत्या के विरुद्ध", "हँसो, हँसो और हँसो", धूमिल– "संसद से सड़क तक", मलयज–"जख्म पर धूल", दुष्यंत कुमार–"जलते हुए वन का वसंत", अज्ञेय–"महावृक्ष के नीचे", "सागर मुद्रा", शिवमंगल सिंह सुमन–"मिट्टी की बारात", ऋतुराज–"एक मरण धर्मा और अन्य", लीलाधर जगूड़ी–"नाटक जारी है" विनोद कुमार शुक्ल–"लगभग जयहिंद", श्रीकान्त वर्मा–"जलसाघर", "मगध", वेणु गोपाल–"वे हाथ होते हैं", सर्वेश्वर दयाल सक्सेना–"खूँटियों पर टँगे लोग", भवानी प्रसाद मिश्र–"तूस की आग", धर्मवीर भारती–"सपना अभी भी", हरिनारायण व्यास–"आउटर पर रुकी ट्रेन", केदारनाथ सिंह–"अकाल में सारस", "उत्तर कबीर तथा अन्य कविताएँ", नरेश मेहता–"महाप्रस्थान", "शबरी", नागार्जुन–"पुरानी जूतियों का कोरस", शमशेर–"काल तुझसे होड़ है मेरी", विजय देव नारायण साही–"साखी", गिरिजा कुमार माथुर–"मै वक्त के हूँ सामने"।

सन् 1980 को "कविता की वापिसी" का वर्ष कहा गया। इस वर्ष एक साथ पुराने और नए कवियों के बहुत से काव्य संग्रह प्रकाशित हुए। राजनीतिक–सामाजिक विकृतियों–विषमताओं पर कवियों के तेवर विद्रोही–मुद्राओं के साथ खुलकर सामने आये। कवि कर्म में व्यंग्य की धार पैनी हो गई और लोक–वेदनाओं–यातनाओं का विस्फोट हुआ। समकालीन कविता को रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह, अशोक वाजपेयी, उदय प्रकाश, श्रीकान्त वर्मा, अरुण कमल ने अन्तर्वस्तु और काव्य–भाषा के स्तर पर नई दिशाओं की ओर प्रवृत्त किया। बाद के काव्य में जो प्रक्रिया शुरू हुई उसमें व्यक्ति का निर्वासन प्रमुख हो गया। व्यक्ति के इस निर्वासन को डॉ. नामवर सिंह मार्क्सवादी व्यक्ति निर्वासन की दृष्टि से देखते हैं, मलयज सर्जनात्मकता के संदर्भ से जोड़ते हैं और डॉ. रामविलास शर्मा अस्तित्ववाद की अवधारणा से जोड़कर देखते हैं। लेकिन सभी आलोचक इस विचार से सहमत हैं कि युवा–पीढ़ी ने आत्म–निर्वासन की क्रूर यातना झेली है और उसे सृजन में बिना किसी छिपाव के व्यक्त कर दिया है।

19.8 समकालीन काव्य-सृजन की मूल प्रवृत्तियाँ या विशेषताएँ

समकालीन काव्य सृजन की मूलभूत प्रवृत्तियों या विशेषताओं का वस्तुवादी विवेचन–विश्लेषण और मूल्यांकन या प्रवृत्तियों का समग्र रूप में निर्धारण सम्भव नहीं है। क्यों संभव नहीं है? इसका प्रमुख कारण तो यही है कि यह सृजन अभी अपनी तरह से नयी–पुरानी पीढ़ियों के बीच तथा पूरी ताकत से सृजन–धाराओं के रूप में प्रवाहित है। नदी की तरह इसने पुराने तटों को तोड़कर जिन नये तटों का निर्माण किया है वे अभी स्थायित्व नहीं पा सके हैं। प्रवाह में इतने खतरनाक भँवर हैं कि गोताखोर तक थाह नहीं पा सकता। अनेक धाराएँ मिलकर जिस एक विशालधारा का निर्माण कर रही हैं उसका अनुभव तो किया जा सकता है पर मझधार में टिका नहीं जा सकता। कविता–अकविता, विचार कविता–ठोस कविता, युयुत्सावादी–निषेधवादी कविता आन्दोलनों का इतना कोलाहल है कि स्थिर मन से विचार करने में बाधा पड़ती है। पुरानी रुचियों–संस्कारों, शास्त्रीय मानदण्डों वाले आचार्य प्रवरों को समकालीन कविता में सृजन का उजाड़वाद, परम्परा की नासमझी, अराजक यौनक्रांति, चीख–गुस्सा झल्लाहट के सिवा कोई गम्भीर समस्या या जीवन–दर्शन नहीं दिखाई देता है। इनमें अधिकांश पुराने आचार्य प्रवर तो ऐसे हैं जो समकालीन कविता को पढ़ते नहीं हैं – केवल उसका खण्डन या फतवे जारी करते रहते हैं। एक नये कवि के शब्द उधार लेकर कहें तो आचार्य गण–

> "थोड़ा सा ऊंघकर
> कह देते सूँघकर
> कोरी तुकबन्दी थी
> कविता क्या खाक थी।"

यह हालत इसलिए भी है कि इन आचार्यों पर रीतिवादी–सौन्दर्यवादी अभिरुचियाँ "हावी" हैं, इनके पास नया विचार बोध या नया काव्य–संस्कार नहीं है। निराला–अज्ञेय–मुक्तिबोध को ये आचार्य न समझ सके न सम्मान दे सके। फलतः नये कवियों को छायावादी कवियों की भाँति अपनी बात समझाने के लिए कविता के साथ आलोचना लिखनी पड़ी। यही हाल "नयी कविता" काल में हुआ था और यही गति समकालीन कविता के काल में जारी है। मलयज, रघुवीर प्रसाद, श्रीकान्त वर्मा, शमशेर, अशोक वाजपेयी को समकालीन सृजन समझाना पड़ रहा है। शुद्ध आलोचकों को समकालीन कविता की प्रवृत्तियों को समझने के लिए समय की थोड़ी दूरी चाहिए। वे इसके इतने पास हैं कि ठीक से देख पाना सम्भव ही नहीं है। फिर समकालीन कविता की लीकें नहीं बनी हैं और न इनका काव्य–शास्त्र निर्मित हो सका है। ऐसी स्थिति के कारण मात्र समझ के लिए हम समकालीन कविता की कुछ एक प्रवृत्तियों की चर्चा कर रहे हैं–

1. समकालीन कविता के प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण कवियों ने समय–समाज की चुनौतियों से उपजी बौद्धिक चिन्ताओं का सृजनशीलता से सीधा रिश्ता कायम किया। इन सभी कवियों ने अपनी काव्य–संवेदना को इतंना धारदार, निर्भय और व्यापक बनाया कि उसमें न केवल राजनीतिक आर्थिक क्षेत्रों के भ्रष्टाचार, चरित्रहीनता पर तेज टिप्पणियाँ, व्यंग्यवक्रोक्तियाँ, खीझ–आक्रोश, गुस्सा–विद्रोह की मुद्राएँ हैं – वरन् मानवीय सार्थकता के सभी सरोकार सक्रिय हैं। समय और समाज के जटिल यथार्थ को उजागर करने के लिए इन सभी काव्य–धाराओं–आंदोलनों–प्रवृत्तियों के कवियों ने अपनी गहरी सामाजिक सांस्कृतिक जागरूकता का अहसास कराया। जीवन जगत के व्यापक प्रश्नों को उठाने के कारण इस काव्यभूमि की अर्थ–चेतना का विस्तार हुआ है।

2. समकालीन काव्य की अन्तर्वस्तु अत्यंत व्यापक है। इतनी व्यापक है कि पूरे देश की जनता के दुःखते–कसकते अनुभव इस सृजन में व्याप्त हैं। देश की राजनीतिक–सामाजिक, आर्थिक–सांस्कृतिक, धार्मिक–नैतिक सभी समस्याओं–प्रश्नाकुलताओं को इन रचनाकारों ने निर्भय भाव से अभिव्यक्त किया है। लोकतंत्र का भीतरी खोखलापन, कांग्रेसी समाजवाद का ढोंग और छल, पूँजीपतियों से साँठ–गाँठ की चरित्रहीनता, जनता का भंयकर शोषण, श्रम का परायापन, आत्मनिर्वासन, अमानवीयकरण, भाषा नीति के साथ दगा, हरित क्रांति की असफलता, आपातकाल की क्रूरता और पागलपन, लोकनायक जयप्रकाश नारायण की लोक क्रांति, अमेरिकी भीख पर बढ़ती निर्भरता, साम्प्रदायिक शक्तियों का उभार, जातिवाद, प्रदेशवाद, नस्लवाद, घटिया–आधुनिकतावाद, व्यक्तिवाद और मार्क्सवाद की टक्कर, युवा–पीढ़ी के विद्रोह के अनेक पक्ष,

हताशा के गहरे घाव आदि, सभी परिस्थितियों का चित्रण किया गया है।

3. नेता, संसद, समाजवाद और स्वतंत्रता पर समकालीन कविता ने जो स्वर अपनाया है वह स्वाधीन भारत का काला इतिहास है। कौए, गिद्ध, गुबरैले, भेड़िये, तेन्दुए, साँड, शेर इस कविता में पाशविक ताकतों की रक्तखोर मानसिकता को सामने लाते हैं। सर्वेश्वर की कविताओं में काली चट्टानों पर अँगड़ाई लेता काला तेन्दुआ सत्ता की बर्बरता का प्रतीक है तथा संसद धूमिल के शब्दों में तेली की वह घानी है जिसमें "आधा तेल है आधा पानी है"। स्वतंत्रता कहने भर को है। हर तरह की पराधीनता का नरक देश भोग रहा है। न आदमी स्वतंत्र है, न भाषा, न अर्थ–व्यवस्थता और न बुद्धजीवी। यहाँ "नेता" शब्द अवमूल्यित होकर लुटेरे–हत्यारे–गुंडे–नंगई पर आमादा मुस्तंडे का अर्थ सन्दर्भ पा गया है। सौमित्र मोहन की लम्बी कविता "लुकमान अली" धूमिल की लंबी कविता "पटकथा" और "मोचीराम" नागार्जुन की लम्बी कविता "हरिजन गाथा", पूरे राजनीतिक पतन की त्रासदी का खुलासा हैं।

4. समकालीन कविता का कथ्य, जन–संघर्ष की चेतना को अनेक रूपों–स्तरों से सीधे– सीधे अभिव्यक्ति देता है। प्रगतिवाद–नयी कविता के कवियों की व्यवस्था विरोध की प्रवृत्ति इस कविता में विद्रोह–विक्षोभ का रूप धारण कर लेती है। सन् 60 के बाद की महँगाई, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, अवसरवादिता, चरित्रहीनता, काला–परिवेश या आपातकाल की बर्बरता, काले–काले अध्यादेश, नागार्जुन से लेकर धूमिल तक को गुस्से से भर देते हैं। समकालीन काव्यानुभूति और काव्यानुभव में एक ऐसे यथार्थ का नया संसार जन्म लेता है जिसमें चौतरफा लड़ाई है। शब्द युद्ध में बदल गए हैं। विजयदेव नारायण साही ने "साखी" कविता संग्रह की कविता "सत की परीक्षा" में लिखा–

> "साधो आज मेरे सत की परीक्षा है।
> बीच में आग जल रही है।
> उस पर बहुत बड़ा कड़ाह रखा है।
> कड़ाह में तेल उबल रहा है।
> उस कड़ाह में मुझे सबके सामने
> हाथ डालना है।
> साधो, आज मेरे सत की परीक्षा है।"

5. नयी कविता मोहभंग की कविता है पर समकालीन कविता मोह–भंग की कविता नहीं है। वह आत्म चीत्कार और व्यक्ति के मोहभंग का साहित्य है। मलयज ने लिखा है– "नेहरू युग का साहित्य इसी शानदार मोहभंग का साहित्य है। इसके विपरीत नेहरू–युग के बाद की राजनीति आम आदमी की राजनीति है। छात्र–असंतोष, घेराव और दल–बदल में आम आदमी की ही नस बजती है। जिस राजनीति के अन्तर्गत न्यूनतम कार्यक्रम का झंडा पार्टी–सिद्धान्तों के चिथड़े को सिलकर बनाया गया हो वहाँ मोहभंग की गुंजाइश रह ही नहीं जाती। आम आदमी की राजनीति स्थिति के इस कटु स्वीकार से ही शुरू होती है। (कविता से साक्षात्कार–पृष्ठ, 165) समकालीन कविता बुनियादी तौर पर इसी कटुस्थिति परिस्थिति की सच्चाई का साक्षात्कार है। इस सच्चाई की ईमानदार अनुभूतियाँ हाड़फोड़ दर्द से निकलकर रचना में आई हैं।

6. नयी कविता के ज्यादातर कवियों पर शीतयुद्ध के आतंक की छाया है। साथ ही उन पर आधुनिकतावादी प्रवृत्तियाँ मानववाद, क्षणवाद, व्यक्तिवाद, लघुमानववाद, अस्तित्ववाद – व्यक्ति–स्वातंत्र्य दर्शन का वर्चस्व है। लेकिन समकालीन कविता के काल में नए ढंग के नव्य साम्राज्यवाद, नव्यपूँजीवाद, नव्य–उपनिवेशवाद, उत्तर आधुनिकतावाद का दबदबा है। समकालीन कविता पर नवमानववाद का लगभग वैचारिक कब्जा है। इधर जिसे नव प्रगतिवाद नाम दिया गया है – उस धारा को रघुवीर सहाय, लीलाधर जगूड़ी, धूमिल, मलयज, कुमार विकल, उदय प्रकाश, मंगलेश डबराल तथा अरुण कमल आगे बढ़ा रहे हैं। फलतः समकालीन कविता में "अकविता" ही क्यों न हो उसमें आधुनिकतावादी, कलावादी, भाववादी विचारधाराएँ पस्त और बेदम हैं।

7. समकालीन कविता में काव्य संवेदना का तनाव ढीला पड़ गया है। तनाव के ढीले पड़ने की बात लगभग समकालीन कविता के सभी आलोचकों ने उठाई है। तनाव के ढीले पड़ने के कारणों की

पड़ताल करते हुए मलयज ने कहा, "समकालीन जटिल परिवेश का तीव्र अहसास और सर्जनात्मक धरातल पर उसकी चुनौती को फलीभूत न कर पाने की स्थिति में ही अक्सर सरलीकरण की प्रवृत्ति पनपती है जिसका विघटित रूप संवेदना और भाषा दोनों के ही फार्मूलाबद्ध हो जाने में दिखाई देता है। सरलीकरण एक प्रकार का शॉर्टकट है जो स्नायुविक ऊर्जा की कमी का संकेत देता है। बहुत पहले शमशेर बहादुर सिंह ने प्रयोगवाद को "नर्वस ब्रेकडाउन" की कला कहा था। आज की ज्यादातर कविता को अगर "नर्वसडैबिलिटी" की कला कहा जाय तो शायद अत्युक्ति नहीं होगी। आज का न सिर्फ अधिकांश लेखन बल्कि विद्रोह की मुद्राएँ भी क्यों शब्दिक लगती हैं? इसलिए नहीं कि उसके पीछे अनुभूति की प्रामाणिकता नहीं है या वह भोग हुए यथार्थ से नहीं उपजा है, बल्कि इसलिए कि संवेदना और उसकी धारक भाषा के बीच कार्यरत तनाव ढीला पड़ गया है या बिखर गया है। ऐसा होने पर सच्ची संवेदना के रहने पर भी शब्द मुर्दार पड़ जाते हैं। और प्रामाणिक लेखन छद्म लेखन बन जाता है। कहना न होगा कि संवेदना और भाषा के बीच कार्यरत उस तनाव को खुराक स्नायुविक ऊर्जा से ही मिलती है। मैंने स्नायुविक ऊर्जा को किसी जीवन मूलक कसौटी के रूप में नहीं, बल्कि सर्जनात्मक परिफलन के रूप में ही ग्रहण किया है। युवालेखन के सन्दर्भ में अक्सर "विद्रोह" और "आक्रोश" जैसे शब्द प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है। ....युवा लेखन बहस में भी यह बात उभर कर आयी है कि युवापीढ़ी ने अपनी विशेष और ऐतिहासिक स्थिति के कारण वह कुछ कर दिखाया है–चाहे वह यथार्थ का बिना लागलपेट के चित्रण हो, सेक्स और राजनीति हो, आडम्बरहीन प्रत्यक्ष संवेदनों से उत्पन्न गैररोमानी भाषा–प्रयोग हो–वह पूर्व पीढ़ी और बिचली पीढ़ी के बूते का न था।"
(कविता से साक्षात्कर, पृष्ठ–170)

युवा पीढ़ी ने एक परिवर्तित ऐतिहासिक स्थिति में अपनी भूमिका को साहस के साथ स्वीकार किया। इसलिए तमाम गुस्सा चीख अकुलाहट बेबसी–बेचैनी, मलाल के बावजूद उनके सृजन में अनास्था का स्थायीभाव नहीं है। नववामपंथी विचारों की ताकत के कारण टूट–टूट कर जीने वाली आस्था की प्रवृत्तियाँ ही इस नए सृजन में प्रमुख हैं। विद्रोह–आक्रोश, चीख–हुल्लड़ के पीछे जीवन प्रक्रिया के साथ सृजन प्रक्रिया के धीमे पड़ जाने की पीड़ा का बोध है। इसमें न तो "मानवीय संवेदना" की अनुपस्थिति है न "नैतिक असंवेदन" की गलन। इसलिए इस लेखन को किसी भी कीमत पर अराजकतावादी स्मृतिभ्रष्ट, यौन–क्रांतिवादी, प्रेम में सहवास की गंध, प्रकृति की सौन्दर्य संवेदना की उपेक्षा की कविता कहकर गैरजिम्मेदार लेखन नहीं कहा जा सकता। यह कविता शहरीकरण की यंत्रणा से उपजी है जिसमें सबसे ज्यादा तबाही बच्चे–बूढ़ों तथा औरतों को झेलनी पड़ी है। रोजी–रोटी कमाने के चक्कर में आदमी सड़क की त्रासदियों का शिकार हुआ है। समकालीन कविता ऐसी स्थिति में जीवनानुभूतियों की तमाम प्रामाणिक मुद्राओं की कविता है।

8. कविता और राजनीति का घनिष्ठ रिश्ता समकालीन कविता में काफी गरम है। इतना गरम कि पिछले तीन दशकों से कविता और राजनीति के सम्बध की चर्चा रही है। आलोचकों–कवियों ने इस विषय पर जमकर लेख लिखे। कारण यह है कि आम आदमी जिन्दगी को नियंत्रित करने वाली शक्ति के रूप में राजनीतिक सत्ता और प्रत्यक्ष–परोक्ष प्रभावों–सम्बधों की अभिव्यक्ति बढ़ गई है। राजनीति के साथ लगाव का अर्थ है अपने युग परिवेश और युग–सन्दर्भ से सम्बन्ध। राजनीति आज जीवन में इतने रूपों, विविध मुद्राओं में घुस आई है कि उससे तटस्थ या दूर रह पाना असम्भव है। राजनीति ही जीवन यथार्थ, जीवन–प्रक्रिया की सच्चाई, ढोंग–झूठ–पाखण्ड को तय करती है। रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर, साही, धूमिल से लेकर उदय प्रकाश तक का सृजन–कर्म एक व्यापक अर्थ में राजनीति से जुड़ा है। इन कवियों ने राजनीतिक कविताएँ लिखी हैं। धूमिल की "पटकथा" या सौमित्र मोहन की "लुकमान अली" अपने पूरे अर्थ सन्दर्भ में राजनीतिक कविता है। धूमिल "समाजवाद" को भी स्वार्थ के रूप में इस्तेमाल करने वालों पर व्यंग्य करते हैं–

"वे सब के सब तिजोरियों के
दुभाषिये हैं।
वे वकील हैं। वैज्ञानिक हैं।
अध्यापक हैं। नेता हैं। दार्शनिक
हैं। लेखक हैं। कवि हैं। कलाकार हैं।
यानि कि–

कानून की भाषा बोलता हुआ
अपराधियों का एक संयुक्त परिवार है
भूख और भूख की आड़ में
चबायी गयी चीजों का अक्स
उनके दाँतों पर ढूढ़ना
बेकार है। समाजवाद
उनकी ज़ुबान पर अपनी सुरक्षा का
एक आधुनिक मुहावरा है।
मगर मैं जानता हूँ कि मेरे देश का समाजवाद
मालगोदाम में लटकती हुई
उन बाल्टियों की तरह है जिस पर "आग" लिखा है
और उनमें बालू और पानी भरा है"

समकालीन कविता के दौर में अनगिनत राजनीतिक कविताएँ लिखी गई हैं। यह इस कविता की एक प्रवृत्ति का रूप कही जा सकती है।

9. समकालीन कविता रेटारिक से लेकर वैचारिक खुलेपन तक दौड़ लगाती है। कभी–कभार वर्णन–स्फीति, विवरण–विस्तार इस कविता की काव्यात्मकता को चौपट करता है। फिर भी जो चीज इस कविता में विशिष्ट दिखाई देती है वह है संघर्ष की ईमानदारी, यथार्थ की तार–तार स्थिति, नाटकीय और फन्तासी का अन्तःसंश्लिष्ट विधान। अनिश्चय, उग्र प्रतिरोध, सेक्स–हिंसा, आतंक–यातना, वैचारिक कशमकश और भिन्नता, व्यक्ति का नगण्यता–बोध और निर्वैयक्तिक तटस्थता, ये सभी काव्य–प्रवृत्ति के रूप में यहाँ सक्रिय हैं। अतः युवा–विद्रोह के अनेक रूप समकालीन कविता में मिलते हैं।

10. समकालीन कविता जीवन–जगत की जटिलताओं–यंत्रणाओं की कविता है। डॉ. परमानंद श्रीवास्तव ने इस बात को स्पष्ट करते हुए कहा है कि "युवा कविता जटिल मानवीय नियति का राजनीतिक शब्दावली में किया गया ऐसा बयान है, जो अन्य व्यवस्थाओं की तरह स्वयं राजनीति में संदेह पैदा करता है। संसद से सड़क तक को अपने दायरे में ले आने वाली यह कविता संसद के बारे में भी प्रश्न करती है और सड़क को लेकर भी निर्द्वन्द्व नहीं है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में घटित तथाकथित प्रगति और विकास की अवधारणा में संदेह प्रकट करने वाली युवा कविता में आदिमता के प्रति अतर्क्य रोमांचक लगाव मौजूद है। "जंगल के हाशिए पर जीने की तमीज" इसी लगाव का सूचक है। युवा कविता कविता की परम्परा में, साथ ही, विचार की परम्परा में भी अविश्वास प्रकट करती है और अपने समसामयिक दबावों को कविता के लिए चुनौती मानती है। कविता की भूमिका को नये सिरे से परिभाषित करने की माँग इसी दबाव का फल है।

युवा कविता में आदमी का जो बिंब निर्मित हुआ है वह अन्तर्विरोधों से घिरा, गुस्से और नफरत के बावजूद असहाय है। उसका गुस्सा "आग" और "आँसू"का एक "तथ्यहीन मिश्रण है।" (शब्द और मनुष्य, पृष्ठ–159) नयी कविता का सहज मानक–लघुमानव समकालीन कविता में "आम आदमी" बनता है। हालांकि "आम आदमी" शब्द बड़ा भ्रामक–उलझा–अस्पष्ट अर्थ का बोधक है पर इस कविता में भी तो रोता–रिरियाता–झल्लाता–चिल्लाता, गुस्से में आग लगाता, यौन–क्रांति को विद्रोह मानता, लोकतंत्र के भ्रष्ट मलबे में दबा असहाय आदमी ही है जिसमें "उदात्त" स्थितियाँ बची ही कहाँ हैं। संसद और सड़क दोनों जगह जो आम–आदमी है वह जाति, धर्म, भाषा, वर्ग, वर्ण, मंदिर, मस्जिद की राजनीति का आदमी है।

11. समकालीन कविता के सौन्दर्य शास्त्र–समाजशास्त्र को आज नये दृष्टिकोण से समझना जरूरी है। क्योंकि यह कविता नारी और प्रकृति दोनों को नयी कविता से भिन्न दृष्टि रखकर देखती है। यहाँ नारी और प्रकृति का गैररोमांटिक संसार एक ऐसी विडंबना–विसंगति के साथ उभरा है जिसमें देहवाद का बाजारवादी–भोगवाद मौजूद है। पूरी अकविता इसी भाव–बोध का रूप कही जा सकती है। मूल बात यह है कि हम कई पीढ़ियों की इस कविता को यथार्थवाद–आधुनिकतावाद के

पैमानों–फार्मूलों से नहीं समझ सकते हैं। धूमिल, विनोद कुमार शुक्ल, जगूड़ी और अशोक वाजपेयी की कविताएँ कविता के नए काव्य–शास्त्र की माँग करती हैं। अब इन कविताओं को लक्ष्मीकांत वर्मा के ''नयी कविता के प्रतिमान'' या नामवर सिंह के ''कविता के नये प्रतिमान'' से नहीं समझा जा सकता। समकालीन कविता सभी पुरानी सौन्दर्याभिरुचियों पर प्रहार करती है। लोकतंत्र–प्रजातंत्र के सभी मूल्य यहाँ मूल्यहीन हो गए हैं। उपभोक्तावादी–संस्कृति की विकृतियों से यह कविता पटी पड़ी है।

12. विरोध–विद्रोह, आक्रोश, विद्रूपता, क्रांति को प्रमुख स्थान देने वाली समकालीन कविता अनास्थावादी दिखाई देने के बावजूद जन–सामान्य के अखण्ड–विश्वास की नींव पर टिकी सास्थावादी कविता है। सभी कवि मानसिक और भावनात्मक यथार्थ को वस्तुगत यथार्थ के रूप में देखने का प्रयत्न करते हैं। विचारधारा के स्तर पर निराशावाद, व्यक्तिवाद, अस्तित्ववाद को यह कवि–कर्म स्वीकार नहीं करता। मध्यवर्ग की खिन्नता अवसाद की अभिव्यक्ति में पूँजीवाद के क्रूर चरित्र का भांडाफोड़ है। गाथा–प्रसंगों, नाटकीय दृश्यालेखों, वक्तव्यों, एकालापों, प्रश्नाकुल संवादों, सपाटबयानी से भरे ब्यौरो–विवरणों में भी एक ऐसी काव्यात्मकता का आलोक भरा है जो जनता के अपराजित संघर्ष का सूचक है। विनोद कुमार शुक्ल – ''बाजार की सड़क'', चन्द्रकान्त देवताले – ''रोशनी के मैदान की तरफ'', अरुण कमल की ''उर्वर प्रदेश'' जैसी अनेक कविताओं में जन–विश्वास भरा हुआ है। इस अर्थ में यह सम्पूर्ण जीवन से लगाव की कविता है –

'' मैं जब लौटा तो देखा
पोटली में बंधे हुए, बूढ़ों ने
फेंके हैं अंकुर''

(उर्वर प्रदेश)

समकालीन कविता के सभी प्रतिबद्ध कवियों ने जन–पक्षधरता के साथ जीवन–विश्वास की कविता लिखी है।

13. समकालीन कविता जीवन के आत्म–विस्तार और जीवन विवेक के सौन्दर्य को खुलेपन से स्वीकार करती है इसी दृष्टि से इस रचना–यात्रा में निराला बोलते हैं। उगता हुआ सूर्य, गीत गाते बच्चे, तूस की आग, खिले कमल, किरण दल इस सृजन में बहुत मिलते हैं। प्रार्थना की मुद्रा में कवि जीवन–शक्ति का सौन्दर्य माँगता है – इस सन्दर्भ में विजयदेव नारायण साही की ''साखी'' से ''प्रार्थना गुरु कबीरदास के लिए'' कविता देखिए–

''परमगुरु
दो तो ऐसी विनम्रता दो
कि अन्तहीन सहानुभूति की वाणी बोल सकूँ
और यह अन्तहीन सहानुभूति
पाखण्ड न लगे
दो तो ऐसा कलेजा दो
कि अपमान, महत्वाकांक्षा और भूख
की गाँठों में मरोड़े हुए
इन लोगों का माथा सहला सकूँ
और इसका डर न लगे
फिर कोई हाथ ही काट जाएगा।''

दिलचस्प बात यह है कि समकालीन कविता के नए–पुराने दोनों तरह के कवियों के मन में कबीर के प्रति असीम आस्था का भाव है। कबीर से प्रेरणा ग्रहण करने का अर्थ है सामाजिक विकृतियों – भ्रष्टाचार के नायकों को ललकारने का साहस।

14. समकालीन काव्य–सृजन में लोकतंत्र की असफल–अराजक और दिशाहीन स्थिति के कारण व्यंग्य की भरमार है। सत्ता हथियाने के खेल में न कोई मूल्य है न कोई आदर्श। पूरा देश राजनेताओं–व्यापारियों के दल–दल में फँसा हुआ है। इसी परिवेश ने क्रोध में सशस्त्र क्रांति, गुरिल्ला विद्रोह, नक्सलपंथ आदि की धारणाओं को आगे बढ़ाया है। इस आक्रामक लेखन की रूढ़ियाँ बनी हैं जिसमें मृत्यु, संभोग, रति, स्तन, जाँघें, अकेलापन जैसे अनेक शब्द इतने पीटे गये हैं कि उनका अर्थ समाप्त हो गया है। स्त्री–पुरुष सम्बन्ध की कल्पना अधूरी–अधकचरी है जिसमें भूख का अर्थ केवल सेक्स है। इतना ही नहीं मानवीय नियति को केवल राजनीति तक सीमित कर देना, अपनी पूरी सांस्कृतिक परंपरा की मूल्यवान स्थिति को स्मृति से बाहर कर देना है। परम्परा के प्रति अस्वीकृति के भाव ने इस सृजन की विचार–भूमि को सतही छिछला और सरल बना दिया है। हमारे मिथक और सांस्कृतिक मनोभाव इस ढंग से उपेक्षा का शिकार हुए हैं कि सृजनकर्म ''सम्पूर्णता'', ''अखण्डता'' के भाव से कटकर उदासीनता–निरर्थकता के बोध में गर्क हो गया है। नए रचनाकारों को कलाओं–दर्शनों, साहित्यों–इतिहास के युगों की न तो कोई जानकारी है न वे उसमें दिलचस्पी रखते हैं। इसलिए उनके आक्रामक लेखन के मूल में गहरी वास्तविकता, ऐतिहासिकता, बौद्धिक वयस्कता का अभाव है, जातीय–स्मृति का भाव गायब है।

19.9 समकालीन कविता का शिल्प पक्ष

समकालीन कविता परम्परागत शिल्प से छुटकारा पाने का प्रयास मात्र नहीं है। वह पूरा संघर्ष है। शिल्प या टेकनीक की दृष्टि से सृजन कर्म का एक मूल्यवान पक्ष यह है कि यह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा चमत्कार रहित सहजता को स्थान देता है और उसमें सघन काव्यात्मक सर्जनात्मकता की निष्पत्ति करता है। कविता को प्रासंगिक बनाने के लिए पुरानी तथाकथित काव्यात्मकता से छुटकारा पाने में ही अपनी भलाई मानता है। कभी वह परम्परागत नियमों और अनुशासनों को चुनौती देकर तोड़ता है तो कभी काव्य–रूप, भाषा, बिंब–प्रतीक, छन्द–लय, कथन–शैली की भंगिमाओं को चतुर संयोजन देता है। परम्परागत प्रबंध मुक्तक को यह स्वीकार नहीं करता। क्योंकि वह जानता है कि हर नया कथ्य अपने साथ नया फार्म या रूप लाता है। जीवन में मूल्यान्धता, अस्वीकृति का जो भाव आया है उसने समकालीन कविता के रूप–विधान पर भीतर–बाहर से असर डाला है। अनियमित जीवन के इन कवियों ने अनियमित गद्य की लय में कविता रच डाली जैसे राजकमल चौधरी की कविता ''मुक्ति–प्रसंग''। ज़ाहिर है कि गहन काव्यात्मकता और कलात्मकता का स्थान समकालीन कविता ने सपाटबयानी और सामान्यीकरणों–सरलीकरणों को दे दिया।

19.9.1 काव्य रूप

कवियों ने प्रगीत के लीरिकल मूड को छोड़कर गद्यात्मक ठोस यथार्थ से भरी नाटकीय कविताओं की काव्य–यात्रा को आगे बढ़ाया। प्रबन्ध काव्य लिखे गए पर परम्परागत प्रबन्ध का ढाँचा गायब हो गया। भवानी प्रसाद मिश्र का ''कालजयी'', जगदीश गुप्त की ''गोपिका'', जगदीश चतुर्वेदी का ''सूर्य पुत्र'', विनय का ''महाश्वेता'', नरेश मेहता का ''महाप्रस्थान'' का प्रबन्ध ढाँचा एकदम विचार केन्द्रित है कथाकेन्द्रित नहीं है। दरअसल समकालीन कविता ने प्रबंधकाव्य का स्थान लम्बी–कविताओं को दे दिया है। ये लम्बी कविताएँ प्रबन्धकाव्य का स्थानापन्न हैं। विविध जीवनानुभवों को विस्तार से प्रस्तुत करने की आन्तरिक तैयारी का विस्फोट। संरचना–गठन, अन्विति प्रभाव सभी में प्रबंध काव्य से भिन्न। राजकमल चौधरी का "मुक्ति प्रसंग", "कंकावती", धूमिल की "पटकथा", "मोचीराम", कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह का "मुक्ति पर्व", लीलाधर जगूड़ी का "इस व्यवस्था में", कमलेश का "जरत्कारु", अशोक वाजपेयी "जबरजोत" जगदीश चतुर्वेदी "एक लंगड़े आदमी का बयान", सौमित्र मोहन "लुकमान अली", ऋतुराज, "दिनचर्या", विनोद कुमार शुक्ल "लगभग जय हिन्द", देवेन्द्र कुमार "खासकर उन्हीं अर्थो में", आग्नेय "अपने ही खिलाफ", कुमार विकल "एक सामरिक चुप्पी"; "वेणुगोपाल" "ब्लेक मेलर", चन्द्रकान्त देवताले "दृश्य", विष्णु खरे "एक चीज के लिए", इस दौर की अविस्मरणीय लम्बी कविताएँ हैं। संवेदना और शिल्प में एक ऐसी आन्तरिक अन्विति है कि इन कविताओं का पाठ विश्लेषण, अर्थ प्रक्रिया के नए सन्दर्भ उजागर करता है। इस दौर में नवगीत आन्दोलन में नए नवनीत रचे गए जिनकी संवेदना शिल्प दृष्टि पुराने गीतों से एकदम भिन्न है। समकालीन कविता का भाव–बोध, व्यक्ति का निर्वासन रमानाथ अवस्थी, दुष्यंत कुमार

के गजल–नवगीतों में नयी सृष्टि और नयी दृष्टि का रूप है। गीत में तर्ज और तरन्नुम का आग्रह नवनीत में नहीं है नवगीत मूलरागों का लय–संगठन है जिसमें मनोभूमिका में बसी पीड़ा बजती है।

19.9.2 भाषा

समकालीन कविता में जीवन जगत के जटिल यथार्थ का दबाव भाषा की पूरी प्रकृति को बदल देता है। जीवन संघर्ष की रगड़ से फूटी काव्य–भाषा की सर्जनात्मकता में जीवन–संग्राम भरा गद्य भरभराकर फूटता है। यह काव्य भाषा समाज और मानव के उस रिश्ते को संकेतित करती है जिसमें भाषा यथार्थ को ही प्रस्तुत नहीं करती, उस छद्म और पाखंड को भी खोलकर रख देती है जिसे अमानवीय स्थिति–परिस्थिति ने बढ़ावा दिया है। लीलाधर जगूड़ी ने कहा है, "समकालीन कवियों की कविता ने केवल भाषा की शक्ति को ही नयी नहीं बनायी, बल्कि स्थिति का विश्लेषण भी किया है। यहाँ शब्द बुलेट का काम करते हैं। आम आदमी तक पहुँचने वाला भाषा का मुहावरे युवा कविता ने रचा है। बल्कि यों कहें कि आज की कविता आम आदमी की कविता है।" (आवेग, पृष्ठ. 13) भाषिक प्रक्रिया और काव्य–प्रक्रिया दोनों की सर्जनात्मकता स्वयं जगूड़ी की कविता में एक खास काव्य–टोन पैदा करती है। यथा –

"फौजी दस्ते की तरह अंधेरे में
एक भाषा खाइयाँ बदली रही है
चीजों की व्यवस्था में
तुम्हारा इस तरह गायब हो जाना
मेरे लिखने की भाषा है
अब निरन्तर सुन रहा हूँ अपने भीतर खुर–खुर
भाषा को जो आघात पहुँच रहा है
मेरी मरम्मत के बहाने।"

काव्य–भाषा को आभिजात्य से पूरी तरह मुक्त करने का एक जोरदार अभियान धूमिल ने चलाया। उन्होंने पैनी, कटखनी, नुकीली, व्यंग्यप्रधान, सपाटबयानी में सम्पन्न और समर्थ, सीधी मार करने वाली भाषा में बिच्छू के डंक सी चोट करने वाली भाषा को सर्जना में ढालकर दम लिया। इस भाषा के पीछे लोक संवेदना की ताकत भी कम नहीं है। लोकानुभव जब बोलचाल की भाषा में रचा जाता है तब वह कितना सहजता से सम्प्रेषणीय होता है, धूमिल ने इसे सिद्ध करके दिखा दिया। उनकी शब्दावली पर गौर करें तो कभी वह संवाद लगती है कभी एकालाप, कभी वक्तव्य, कभी हलफनामा, कभी घटना, कभी स्थिति का पूरा बिम्ब। एक जागरूक कवि का समकालीन जिन्दगी पर दिया गया सार्थक वक्तव्य। विशेष बात यह है कि इस काव्य भाषा में गुस्सा–आक्रोश, नफरत–विद्रोह कि अर्थच्छायाएँ साफ–साफ उभरती हैं। भाषा का भाव–संप्रेषण व्यापार इतना सक्षम है कि अपनी बात पाठक तक पहुँचाने में उसे बाधा नहीं होती। कलावाद–रीतिवाद भी इस भाषा में नहीं है स्थानीय रंग की शब्दावली का प्रयोग भाषा की सर्जनात्मकता को बढ़ाता है। जीवन के अनुभव को वे संवेदना की गहराई से पकड़ते हैं–

गीली मिट्टी की तरह हॉ हॉ मत करो
तनो
अकड़ो
अमरबेलि, की तरह मत जियो
जड़ पकड़ो'

निराला से लेकर धूमिल तक, धूमिल से लेकर उदय प्रकाश तक भाषा ने कृत्रिम आभिजात्य को इस हद तक तोड़ा है कि "चमरौंधा", "डबरे", "चौका", "पाला लगी मटर","चुपाई मारौ दुलहिन" जैसे अनेक स्थानीय शब्द भाषा में रचनात्मक ऊर्जा पैदा करते हैं। लोक–संवेदना ने लोकोक्तियों मुहावरों में अपने जीवनानुभव को ताजगी से पेश किया। हालांकि अकविता की काव्य–भाषा में सपाटबयानी, बड़बोलापन, कथनों का अतार्किक विस्तार, फिकरेबाजी का चमत्कार है और जातीय स्मृति की कोई पहचान भी इस भाषा में नहीं है।

पुरानी पीढ़ी के कवियों की भाषा में कुछ संकटों से जूझने का भाव है जैसे रघुवीर सहाय को "भाषा भ्रष्ट हो चुकी है", के प्रति अफसोस है। लेकिन ज्यादातर नए कवियों को भाषा के "आस्तिक" और "व्यक्तित्व" निर्माण की न तो जानकारी है न चिन्ता। युवा लेखन की निर्भीकता और खुलेपन में सपाटबयानी की दरिद्रता पैठती गई। फलतः एक संस्कारवान सृजनधर्मी भाषा वे नहीं दे सके। भाषा की स्वतंत्रता देखते-देखते यहाँ दीनता में बदल गई। अशोक वाजपेयी ने भरे हृदय से लिखा "भाषा ने बात को सीधे साफ-साफ कहने की क्षमता जरूर उपलब्ध की लेकिन जैसे ऐसा करने से उससे पहले जो कहा गया था वह सब कुछ वह भुला बैठी : हमारी भाषा स्मृतिहीन भाषा है और चूँकि अपने तात्कालिक प्रसंग के अलावा और कुछ और नहीं उकसाती या याद करती, वह एक अतीतहीन, एक अनवरत वर्तमान की भाषा है एक अनैतिहासिक मुहावरा है।" (फिलहाल, पृष्ठ-143) भाषा का भीतरी ध्वंस इतना हुआ कि रचनात्मक कल्पना ने जातीय स्मृति से अपने हाथ भी धो लिये। भाषा परम्परा से कटने का अर्थ है अपने जातीय-सांस्कृतिक संवेदन से विच्छिन्न हो जाना। समकालीन को परम्परा से, स्मृति, से न जोड़ने का परिणाम है कि समकालीन कविता क्लासिकल संवेदना की बड़ी कालजयी रचनाएँ नहीं दे पाई।

19.9.3 बिम्ब और प्रतीक

समकालीन कविता में बिंब, प्रतीक और मिथक तीनों की स्थिति मिलकर भी कोई सर्जनात्मक वैशिष्ट्य पैदा नहीं कर सकती। नयी कविता ने दमकते-खनकते बिंब, प्रतीक, मिथक दिये थे और उनमें हमारे परम्परा की जातीय स्मृति जीवन्तता से धड़कती थी। यह जातीय धड़कन समकालीन कविता में मंद हो गई। धीमी नब्ज निश्चय ही किसी की खतरनाक बीमारी की सूचक है। मिथक और बिंब-प्रतीक चेतना के सार्थक उपयोग के अभाव में समकालीन कविता की सपाटबयानी, ब्यौरा-वर्णन, विवरण, वक्तव्यबाजी के बड़बोलेपन का शिकार हो गए। ऐसा नहीं है कि यहाँ प्रतीक-बिंब नहीं है-पर आम आदमी की रोज़मर्रा की जिन्दगी में खोये हुए हैं। जैसे, केदारनाथ सिंह की कविता 'बैल' में बैल उस असहाय आदमी का प्रतीक है-जो दूसरों के द्वारा हाँका जाता है :

"वह एक ऐसा जानवर है जो दिन भर,
भूसे के बारे में सोचता है
रात भर ईश्वर के बारे में"।

समकालीन कविता में सभी कवियों के अपने-अपने बिंब-प्रतीक हैं। – सर्वेश्वर ने "जंगल", "आग", "कुआनो नदी", "लोकतंत्र", "तेन्दुआ", "चट्टानें", न जाने कितने नए प्रतीक निर्मित किए और यही काम धूमिल ने किया। सर्वेश्वर में "जंगल", इतिहास-चेतना, धूमिल में "जंगल" अव्यवस्था और जगूड़ी की कविता में "जंगल" अराजकता का प्रतीक है। अर्थ की नई चमक उसमें कौंधती है किन्तु लगातार पुनरावृत्ति और सदैव उसमें नए अर्थ भरने की चेष्टा इस समर्थ प्रतीक को निरर्थकता के कुँए में धकेल देती है। ऐतिहासिक-पौराणिक मिथकों का समकालीन कविता ने सार्थक उपयोग किया है। इतिहास के पात्र भी मिथक के रूप में आए हैं। मिथकों के इस ढंग के प्रयोग ने जातीय-अस्मिता और वर्तमान स्थितियों के बीच रचनात्मक संवाद कायम किया है। श्रीकान्त वर्मा की "जलसाघर" धर्मवीर भारती की 'सपना अभी भी' विजयदेव नारायण साही की "सारनी' में इतिहास प्रसिद्ध विजेताओं के नाम लगातार कौंधते हैं। श्रीकान्त वर्मा का "मगध" इस क्षेत्र की एक बड़ी रचनात्मक उपलब्धि है – यथा

"केवल अशोक लौट रहा है
और सब
कलिंग का पता पूछ रहे हैं
केवल अशोक सिर झुकाए है
और सब विजेता की तरह चल रहे हैं"

ऐसे ही राजकमल चौधरी की कविता "मुक्ति प्रसंग" में "उग्रतारा" के पौराणिक-मिथक के माध्यम से आधुनिक मनुष्य के मन की स्वाधीनता की घोषणा संस्कारों की रगड़-उलझन के बावजूद की गई है – यथा :

"अब तुम मेरी पूजा करो उग्रतारा
मैं सोया हुआ वर्तमान हूँ
शिव हूँ
तुम्हारा सम्पूर्ण आत्म–निवेदन
स्वीकारने का एकमात्र मुझको रह गया है अधिकार"।

समकालीन कविता में बड़बोलापन एवं सपाटबयानी भी ज्यादातर कविताओं के बिंबों–प्रतीकों–मिथकों को कमजोर बनाती हैं असम्बद्ध शब्दों के संशोधन में कवि कितनी चतुराई बरते वह भाषा के अवमूल्यन से आगे नहीं बढ़ पाता। कहीं–कहीं असम्बद्ध बिंब–प्रतीकों का अतिशय–विस्तार स्थिति की जटिलता को प्रभावहीन बना देता हैं। समर्थ बिंब–निर्माण समर्थ रचना कर्म की कसौटी है। मलयज के शब्दों में "बिंबों का कवि पाठक को अपने सृजनात्मक अनुभव के अंतरंग में स्थापित करना चाहता है"। (कविता से साक्षात्कार, पृष्ठ–149) समकालीन कविता में केदारनाथ सिंह, अशोक वाजपेयी, विनोद कुमार शुक्ल जैसे कवियों के बिंब यह काम बखूबी करते हैं लेकिन ज्यादातर युवा कवि इस काम को करने में असमर्थ है। सर्जनात्मक भाषा के इकहरेपन ने बिंब की ताकत को बढ़ने ही नहीं दिया। नतीजा यह है कि बिंबों–मिथकों के बहुआयामी सृजनात्मक अर्थ–संस्कार से समकालीन कविता का अधिकांश वंचित रह गया है।

19.9.4 छन्द

समकालीन कविता ने मुक्त छन्द की सर्जनात्मक संभावनाओं का जी भर कर उपयोग किया है। इस मुक्त–छन्द को हर तरह से छीलकर गद्य की लय में ढाल लिया है। कविता में बोलचाल का सहज गद्य, बौद्धिक तेवर का वैचारिक गद्य और अखबारी लेखन का गद्य तीनों मिलकर एक नयी गद्य–लय रचते हैं और यह काम रघुवीर सहाय, श्रीकान्त वर्मा, मुक्तिबोध आदि सभी ने खूबसूरती से किया है। रघुवीर सहाय ने इस क्षेत्र में अविस्मणीय दक्षता हासिल की है। एक उदाहरण लीजिए–

"बच्चा गोद में लिए
चलती बस में
चढ़ती स्त्री
और मुझमें कुछ दूर तक घिसटता जाता हुआ।"

इस कविता में गद्य के वाक्यों का छोटा–बड़ा विस्तार भीतर के वैचारिक तनाव को भाषा की लय में बाँधने का सफल प्रयास है। कविता वक्तव्य या रिपोर्ताज भर नहीं है – इससे बहुत कुछ ज्यादा है क्योंकि अर्थ की लय पाठक को दूर तक पकड़े रहती है। पूरी गद्य की बनावट में महानगरों की भीड़ में बच्चा लिए बस पकड़ने के लिए खटती संघर्ष करती औरत अपने और अपने बच्चे की जान जोखिम में डालकर चलती बस में चढ़ती है क्योंकि उसे काम पर या अपनी मंजिल पर पहुँचना हैं।

कुछ कवियों ने तुक और गति को भी अपनाया है और तुक से अर्थ–ध्वनि में वृद्धि की है। इस काम में धूमिल माहिर हैं – "अपने यहाँ संसद एक ऐसी घानी हैं जिसमें आधा तेल–आधा पानी हैं", मूलतः यह तुक लोककथन की एक शैली है। मध्य प्रदेश के कवि गिरिजाकुमार माथुर, विनोद कुमार शुक्ल, भगवत रावत आदि "कहन शैली" अपनाते हैं। लोक–छन्दों में इन कवियों ने बहुत सा सृजन किया है। नवगीतकार वीरेन्द्र मिश्र और गजलकार दुष्यंत कुमार की छन्द–कला अशास्त्रीय होते हुए भी शास्त्रीय है। लय में जो ठाठ बाँधा गया है उसके ठसके में देशी अदा है। कभी कभार रघुवीर सहाय जैसे कवि समकालीन कविता में श्रीधर पाठक और मैथिलीकरण गुप्त की याद ताजा कर देते हैं। जैसे–

"निर्धन जनता का शोषण है
कहकर आप हँसें,
लोकतंत्र का अन्तिम क्षण है
कहकर आप हँसे।"

समकालीन कविता मुहावरा अनेक छन्दों की रंगत से निर्मित हुआ—जिन्हें दो—चार में गिनना सम्भव नहीं है। इतनी बार जरूर है कि गद्य—पद्य का कृत्रिक विभाजन मिटाकर नया सृजन नए गद्य तर्क पर केन्द्रित हो गया है। बौद्धिकता, विज्ञान—प्रौद्योगिकी, संचार—सूचना, क्रांति की भाषा के प्रभाव—दबाव में नये जीवन जगत का यथार्थ कम से कम शब्दों में जीवन—लय भरकर सामने आया है।

19.10 सारांश

इस इकाई में आपने समकालीन कविता के स्वरूप एवं उसकी प्रवृत्तियों का अध्ययन किया। समकालीन कविता अभी हमारे इतने निकट है कि उसका वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन संभव नहीं है। हाँ, इस कविता की इस शक्ति को हम पहचान सकते हैं कि इसने अर्थ—भूमि का विस्तार किया है। इसके लिए जीवन जगत का कोई क्षेत्र वर्जित नहीं है, किसी पर भी कविता लिखी जा सकती है। राजनीतिक—आर्थिक क्षेत्रों की विद्रूपताओं—विकृतियों को व्यंग्य—वक्रोक्ति और सपाटबयानी दोनों ही तरह से अभिव्यक्त किया गया है और नए कवि की निर्भयता देखते ही बनती है। तमाम खोखले मूल्यों—परम्परा के प्रति उसमें सीधे—सीधे निषेध का भाव है। यह कविता अस्तित्ववाद, कुंठावाद, भाववाद से मुक्त होकर नव वामपंथी, नव्य सांस्कृतिक—साम्राज्यवादी·आधुनिकता, उत्तर—आधुनिकता•दोनों की चालाकी, छलकपट, पाखण्ड को उघाड़ती है। तथ्य—संवेदना और रूप में यह कविता किसी भी विदेशी आंदोलन या विचारधारा की नकल नहीं है। यह हमारे ही परिवेश की समाज—संस्कृति की, जीवन—जगत की स्थिति परिस्थिति से उपजी कविता है। इसमें हमारा देश पूरी तरह मौजूद है। जन—जन की व्यथा कथा का इसमें सच्चा इतिहास है। कविता में ठोस जीवनानुभवों को अभिव्यक्त करने में युवाकवियों में सरलीकरण और सामान्यीकरण की प्रवृत्ति बढ़ी है और काव्य—भाषा जातीय स्मृति से कट रही है यही इस कविता की सीमा है। लेकिन कुल मिलाकर समकालीन कविता आज के हिन्दुस्तान के भीतरी—बाहरी इतिहास—राजनीति का यथार्थ प्रतिबिंब है।

19.11 प्रश्न अभ्यास

1. समकालीन कविता के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
2. समकालीन कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
3. समकालीन कविता की भाषा पर चर्चा कीजिए।

इस खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

रामविलास शर्मा : मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

नामवर सिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास।

रामधारी सिंह दिनकर : काव्य की भूमिका।

नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ।